ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

## तारण-तरण

# श्रावकाचार प्रवचन

(श्रीमद् तारणतरणस्वामी द्वारा रचित
तारण-तरण श्रावकाचार ग्रन्थ की चयनित गाथाओं पर हुए
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगलमयी अष्ट शब्दशः प्रवचन)

: हिन्दी अनुवाद :

**पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**

**बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)**

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

**प्रथम संस्करण :** 1000 प्रतियाँ

**ISBN No. :**

**न्यौछावर राशि :** 20 रुपये मात्र

**प्राप्ति स्थान :**

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

# प्रकाशकीय

श्रीमद् तारणतरणस्वामी द्वारा रचित तारणतरण श्रावकाचार ग्रन्थ की चुनी हुई गाथाओं पर आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दश: धारावाही प्रवचन प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

श्रीमद् तारणस्वामी १६वीं शताब्दी के उस कालचक्र में हुए महापुरुष हैं जिस समय राजनीति में उथल-पुथल, सम्प्रदायों में तनाव का जोर था। ऐसी विषम परिस्थितियों में आपने अपनी सरल सुबोध शैली से जैन तत्त्वज्ञान को न मात्र जीवन्त ही रखा अपितु अपने प्रभावक व्यक्तित्व से उसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी किया। कहा जाता है कि आपके उपदेशों से लगभग पाँच लाख लोगों ने साम्प्रदायिक व्यामोह को त्यागकर पवित्र जिनमार्ग को अपनाया था। आपके समागम में सभी जाति और वर्ग के लोग आते थे और पवित्र जिनशासन के अनुगामी बन जाते थे।

वीर निर्वाण संवत् 2491 में पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य अनुयायी सागर निवासी श्रीमन्त समाजभूषण सेठ भगवानदास शोभालालजी ने पूज्य गुरुदेवश्री से तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार की विशिष्ट गाथाओं पर प्रवचन प्रदान करने का अनुरोध किया। जिसे स्वीकार कर गुरुदेवश्री ने ये प्रवचन प्रदान किये। विदित हो कि इससे पूर्व भी गुरुदेवश्री ने तारणस्वामी द्वारा रचित ज्ञानसमुच्चयसार तथा उपदेशशुद्धसार ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। इन तीनों ग्रन्थों पर हुए आठ-आठ प्रवचनों के संकलन संकलित प्रवचन के रूप में अष्ट प्रवचन भाग 1, 2, 3 के रूप में उपलब्ध हैं। अब यह श्रावकाचार ग्रन्थ के शब्दश: प्रवचन आपके सन्मुख प्रस्तुत किये जा रहे हैं। अत्यन्त हर्ष के साथ सूचित करते हैं कि एक मुमुक्षु भाई के सौजन्य से उपदेशशुद्धसार और ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थ के ऑडियो प्रवचन भी उपलब्ध हो गये हैं, जिनका शब्दश: प्रकाशन शीघ्र ही प्रस्तावित है।

सभी जीव इन प्रवचनों का लाभ अवश्य लेंगे, इसी भावना और विश्वास के साथ...

निवेदक

**ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,** मुम्बई

# श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

# श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

# अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

## ( संक्षिप्त जीवनवृत्त )

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्वार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

**शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से

तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित '**समयसार**' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — '**सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।**' इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ '**स्टार ऑफ इण्डिया**' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से ( दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु

के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं – यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

# अनुक्रमणिका


| प्रवचन नं. | तारीख | गाथा | पृष्ठ क्रं. |
|---|---|---|---|
| १ | ०८-०९-१९६४ | ३, १३, ३३, ३१३, ३५३ तथा ३५७ | १ |
| २ | १४-१०-१९६४ | ४३, ४४, ४५, ४९, ६० | १९ |
| ३ | १५-१०-१९६४ | ११५, १३२, १३३, १३४, १४२, १६८, १६९ | ३७ |
| ४ | १६-१०-१९६४ | १८३, १८४, १८९, १९५, १९८ | ५४ |
| ५ | १७-१०-१९६४ | १९९, २००, २०८, २०९, २१०, २१५ से २२० | ७१ |
| ६ | १८-१०-१९६४ | २२१, २२३, २२४, २३६ | ८९ |
| ७ | १९-१०-१९६४ | २३७, २४२, २४५ से २४८, २५० से २५२, २६२, २६६, २७२ | १०७ |
| ८ | २०-१०-१९६४ | २९४ से २९६, ३०५, ३२५, ३३३, ३४६, ३५६, ३९२, ३९९, ४०० | १२७ |

ॐ
परमात्मने नमः।

## तारण-तरण

# श्रावकाचार प्रवचन

**( श्री तारणस्वामी द्वारा रचित तारणतरण श्रावकाचार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन )**

**१**

भाद्र शुक्ल २, मंगलवार, ८-९-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-३, १३, ३३, ३१३, ३५३ तथा ३५७, प्रवचन - १८

यह श्रावकाचार ग्रन्थ है। इसके कर्ता तारणस्वामी अध्यात्मदृष्टिवन्त ५०० वर्ष पहले हुए। उन्होंने श्रावकाचार किसे होता है, किस प्रकार होता है, उसका यहाँ कथन है। मंगलाचरण करते हैं, श्रावकाचार शुरु करने से पहले।

**देव देवं नमस्कृतं, लोकालोक प्रकाशकं।**
**त्रिलोकं अर्थ ज्योति, ओमाकारं च विन्दते॥१॥**

पहली गाथा। क्या कहते हैं? देव। चार प्रकार के देवों के देव—इन्द्रादिक द्वारा '**नमस्कृतं**' देवाधिदेव परमात्मा तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर, चार प्रकार के देवों के भी देव हैं। चार प्रकार—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक, जो चार प्रकार के देव हैं, वे भी उनको नमस्कार करते हैं; इसलिए देवाधिदेव कहने में आता है। '**लोकालोक प्रकाशकं**'। लोक और अलोक का प्रकाश करनेवाले। तीन लोक के पदार्थों के लिये ज्योतिरूप है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव तीन लोक में लोक और अलोक के प्रकाशक हैं और तीन लोक के पदार्थ के ज्योतिरूप हैं। तीन लोक के पदार्थ की ज्योति

है कि इस जगत के पदार्थ जैसे हैं और मैं ऐसा हूँ, ऐसा भगवान का ज्ञान प्रकाशता है तो उसे ज्योतिरूप कहने में आता है।

ॐको भी वन्दना करता हूँ। आचार्य महाराज तारणस्वामी को ॐ का बहुत प्रेम है। तो पहले ॐ जो पाँच परमेष्ठी का वाचक शब्द है, वाचक-वाच्य, उनको वन्दना करते हैं। भगवान की वाणी, भगवान ही ॐ हैं और भगवान के मुख में से 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे' भगवान के मुख में से ॐ वाणी निकलती है। गणधर उसमें से बारह अंग की रचना करते हैं। यहाँ तारणस्वामी (ने) प्रथम श्लोक में ही श्रावकाचार का स्वरूप कहने से पहले, देवाधिदेव को पहले नमस्कार किया है।

१३वीं गाथा। **सरस्वती को नमस्कार।**

**कुज्ञानं तिमिरं पूर्ण, अंजनं ज्ञानभेषजं।**
**केवलि दृष्ट स्वभावं, च जिन सारस्वती नमः ॥१३॥**

देवाधिदेव को नमस्कार करके, तारणस्वामी यहाँ १३वीं गाथा में सरस्वती को नमस्कार करते हैं। भाव सरस्वती, अन्तर का ज्ञान; द्रव्य सरस्वती, वीतराग की वाणी। भाव सरस्वती अन्तर का सम्यक् ज्ञान। केवलज्ञान अथवा भावश्रुतज्ञान और द्रव्य सरस्वती भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी। उसको यहाँ सरस्वती कहने में आया है। उस सरस्वती को यहाँ नमस्कार करते हैं।

कैसी है सरस्वती-भगवान की वाणी ? मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकार से जो पूर्ण भाव है, उसको मिटाने के लिये.. समझ में आया ? अनादि का जो अज्ञान निगोद से लेकर अनन्त बार जैन साधु होकर, मिथ्यादृष्टि दिगम्बर द्रव्यलिंग को धारणकर नौवीं ग्रैवेयक तक गया तो भी अज्ञान का नाश हुआ नहीं। इस अज्ञान का नाश करनेवाली (सरस्वती है)। सम्पूर्ण अज्ञानरूपी अन्धकारपूर्ण जो अज्ञानी का भाव, उसको मिटाने के लिये भगवान की वाणी में सामर्थ्य है। दूसरे की वाणी अज्ञान मिटाने में निमित्त भी हो सकती नहीं। देखो! देवाधिदेव को नमस्कार किया। (बाद में) १३ वीं गाथा में यह आया। समझ में आया ?

भगवान कैसे हैं ? '**केवलि दृष्ट स्वभावं**'। केवली द्वारा तीन काल—तीन लोक जो देखने में आये, उसका प्रकाश करनेवाली ऐसी जिनेश्वर-वाणी है। भगवान की वाणी में

तीन काल, तीन लोक जो ज्ञान में देखने में आये, वही वाणी में आया है। जैसा ज्ञान हुआ, ऐसी वाणी हुई। उस वाणी को यहाँ सरस्वती कहते हैं और उस सरस्वती को यहाँ विनय करके, नमस्कार करके श्रावकाचार वर्णन करने में आता है। कहो, समझ में आया? अब, ३३। ३३ (गाथा) है न? अब तत्त्व की बात आयी। शुरुआत यहाँ से होती है। देखो, क्या कहते हैं?

देव को नमस्कार करके और सरस्वती को नमस्कार करके सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा जाता है। सम्यग्दर्शन किसको होता है? कैसे होता है? उसका क्या स्वरूप है? उसका वर्णन करते हैं।

**सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च, शुद्ध दृष्टि श्च दृष्टते।**
**श्रावकं अव्रतं जैनं, संसार दुःख परान्मुखम ॥३३॥**

सातों प्रकृतियों का सर्वथा क्षय। देखो! अपने सुबह चलता है। कर्म की प्रकृति है, वह अपने को दोष नहीं करती है। सेठ! आताा है? सवेरे चलता है। कर्म अपने को दोष नहीं करता है, यह निर्णय पहले करना चाहिए। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और राग-द्वेषरूपी मिथ्याचारित्र, यह कर्म से अपनी पर्याय में होते हैं, ऐसा है नहीं। अपना अनादि का स्वरूप का अभान के कारण मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या राग-द्वेष का परिणाम अपनी पर्याय में अपने उल्टे पुरुषार्थ से आत्मा में होता है। रतनलालजी! कर्म नहीं करवाता। वह पहले कहा। '**सप्त प्रकृति विच्छेदो**'। छेद करनेवाला अपने पुरुषार्थ से उल्टा राग-द्वेष और मिथ्यात्व करता था, वह सुलटा पुरुषार्थ करके, उस सात के निमित्त से अपनी पर्याय में मलिनता थी, उसका छेद हुआ, तो सात प्रकृति भी उस कारण से छेद हो जाती है। समझ में आया?

सात प्रकृति के नाम भी नहीं आते होंगे? मिथ्यात्व, मिश्रप्रकृति, समकित मोहनीय। ऐसी तीन प्रकृति है। दर्शनमोहनीय, और अनन्तानुबन्धी चार। अनन्त संसार का कारण। अनन्त क्रोध, मान, माया और लोभ, ये सात प्रकृति है। सेठ! सात प्रकृति के नाम आते हैं? पूरे नाम नहीं आते। ठीक है, स्वीकार करते हैं, ठीक है। देखो! ३३ में आया। '**सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च**'। उसका अर्थ—अपने आत्मा में शुद्ध स्वभाव अखण्ड आनन्द और ज्ञायकमूर्ति है, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि करने से सब प्रकृति के निमित्त से अपनी पर्याय में जो अपराध

मिथ्यात्व का था, उसका जब नाश हुआ तो सात प्रकृति का भी नाश होता है। सात प्रकृति का आत्मा से नाश करना पड़ता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आत्मा पर प्रकृति का छेद करे, ऐसा नहीं। आत्मा अपना ज्ञायक चैतन्यस्वरूप... वह अभी पीछे आयेगा, अपने स्वभाव में... ३५३ आदि में आयेगा। भगवान आत्मा वस्तु एक समय में पूर्ण ज्ञायक आनन्द। पर्याय में कर्म का निमित्त है और जीव अपनी भूल से करता अपराध है। उस भूल को टालना, उसका नाम सप्त प्रकृति का नाश हो जाता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताया है।

'**सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च**'। अपना ज्ञायकमूर्ति पूर्णानन्द स्वरूप, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी भाव का नाश होता है। क्या कहा? भावकर्म का नाश होता है। भावकर्म मिथ्यात्व परिणाम, राग-द्वेष भाव, वह भावकर्म है। और प्रकृति जड़ द्रव्यकर्म है। तो द्रव्यकर्म का भी नाश आत्मा में करना नहीं; भावकर्म का भी नाश करूँ—ऐसा नहीं है। अमरचन्दभाई! अपना शुद्ध ज्ञानमूर्ति पर्याय में अनादि से भूल करता था, मिथ्या अभिप्राय (था कि) पुण्य में धर्म है, पाप में मजा है, संयोगी चीज़ मैं करता हूँ, संयोग से मुझमें सुख होता है, ऐसी जो मिथ्याश्रद्धा का अभिप्राय था, उसके साथ जो अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का विकार था, उससे मेरा स्वरूप भिन्न है, ऐसा पूर्ण शुद्ध ज्ञायक की दृष्टि करने से, वह विकार / भावकर्म का नाश अथवा उत्पत्ति होती नहीं, उसका अर्थ भावकर्म का नाश आत्मा ने किया, ऐसा कहने में आता है। अमरचन्दभाई! भावकर्म का नाश आत्मा कर नहीं सकता। भावकर्म उत्पन्न होता है पर्याय में, किन्तु वह स्वभाव दृष्टि से (होता) नहीं और स्वभाव की दृष्टि करने से उसका नाश करना पड़ता है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? स्वभाव ज्ञायक चैतन्यमूर्ति अखण्डानन्द एकरूप स्वरूप परमात्मा मेरा अभेद स्वरूप है। देखो! उसकी दृष्टि करने से मिथ्यात्वरूपी विकारी भावकर्म और अनन्तानुबन्धी का विकाररूप परिणाम मलिन भावकर्म, उसका नाश हो जाता है। नाश का अर्थ (यह है कि) उस विकार की उत्पत्ति होती नहीं। स्वभाव का आश्रय-दृष्टि करने से विकार की उत्पत्ति होती नहीं, उसको विकार का नाश किया—ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? अभ्यास नहीं।....चंदजी! अभ्यास किया है कभी? कमाना, पैसा, पैसा, पैसा। क्या कहते हैं?

कहते हैं, '**सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च**'। जैनदर्शन में ऐसी चीज़ है, अन्य में ऐसा है नहीं। सात प्रकृति क्या है, उसके निमित्त से आत्मा अपने से क्या अपराध करता है और उस अपराध का नाश किस प्रकार होता है, ऐसा उसको पहले समझ में लेना चाहिए। प्रकृति तो जड़ है, वह तो निमित्तमात्र है। जड़ प्रकृति अपने को दोष करती नहीं। दोष करता है तो प्रकृति को निमित्त कहने में आता है। शोभालालभाई! समझ में आया?

कहते हैं, '**सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च, शुद्ध दृष्टि श्च दृष्टते।**' देखो! है न? शुद्ध आत्मदृष्टि ही, शुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन ही। इतना जोर लिया, भाई! शुद्धदृष्टि है न? शुद्ध। शुद्ध का अर्थ किया। ज्ञायकदृष्टि अथवा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है कि जो श्रावक का पहला धर्म का आचरण है। श्रावकाचार में पहला आचरण उसको कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का आचरण हुए बिना श्रावक का कोई आचरण हो सकता नहीं, होता ही नहीं। तो पहले सम्यग्दर्शन की व्याख्या की। देखा! संख्या भी ३३ आयी है उसमें। दो (बार) तीन। समझे?

'**शुद्ध दृष्टि श्च दृष्टते।**' आत्मा में ... करता है। क्या कहा? अपना स्वभाव परमानन्द ज्ञायकभाव (है), ऐसी दृष्टि करने से सप्त प्रकृति का विच्छेद होता है और अपना स्वभाव उसमें प्रतीति में, दिखने में आता है। प्रतीति में, देखने में-श्रद्धा में, देखने में आता है। ....जी! पहली बात श्रावक की यह मुख्य बात है। इसके बिना, सम्यग्दर्शन बिना श्रावकपना होता ही नहीं। जैन होने पर भी। यहाँ देखो! '**श्रावकं अव्रतं जैनं**' तीसरा पद है। समझ में आया? ऐसा अविरती श्रावक होता है, वही जैनी है। है भाई? जैनी, यह जैनी है। यहाँ तो तारणस्वामी उसको जैनी कहते हैं। अमरचन्दभाई! नामनिक्षेप से जैन है, स्थापना में-सम्प्रदाय में जन्म हुआ है, उसको परमार्थ से जैन कहते नहीं। रतनलालजी! हम जैन में जन्म हैं तो हम जैनी है। नहीं। इनकार करते हैं।

'**श्रावकं अव्रतं जैननः**' अभी तो अव्रती जैन सम्यग्दृष्टि। जिसको अभी व्रत नहीं हो, चारित्र नहीं हो, वह प्रथम दशा जैन की (है)। '**श्रावकं अव्रतं जैनं**' अव्रती जैन अपना शुद्ध आत्मा को देखता है, श्रद्धा करता है, अनुभव करता है, सप्त प्रकृति का नाश होता है, तब उसको अव्रती जैन प्रथम भूमिका का कहने में आता है। समझ में आया? ऐ... सेठ!

हम जैन में जन्मे हैं, (इसलिए) हम जैन है, जैन है—ऐसा नहीं। नहीं चलेगा। देखो! क्या कहते हैं?

'**संसार दुःख परान्मुखम**' कैसा है जैन? कि जो अव्रती श्रावक होता है, वही जैनी है। जैन का अर्थ जीतनेवाला। किसको जीतनेवाला? अपनी पर्याय में राग-द्वेष और अज्ञान और मिथ्याभाव है, उसे स्वभाव के आश्रय से जीतनेवाला, उसको अव्रती जैन, जैन के पहले एक नम्बर में गिनने में आता है। कहो, समझ में आया? उसके बिना जैन कहते नहीं। मात्र पूजा, भक्ति, व्रत-बाह्य का व्रत, आचरण करो, (उसमें) राग की मन्दता हो तो पुण्य है। जैनपना उसमें नहीं आया? जैनपना, तो कहते हैं कि, '**संसार दुःख परान्मुखम**'। वही जैन संसार के दुःखों से विपरीत सुख का भोगनेवाला है। क्या कहा? आत्मा अपना शुद्ध आनन्द, ज्ञायकमूर्ति की अन्तर्मुख दृष्टि करने से वह दुःख से परान्मुख हो जाता है। सम्यग्दृष्टि, हों! प्रथम चौथे गुणस्थान में अव्रती सम्यग्दृष्टि। अभी पंचम गुणस्थान का श्रावक बाद में होगा। और छठ्ठा-सातवाँ (गुणस्थान) मुनि का तो बाद में आता है। कहते हैं....

सम्प्रदाय में खबर नहीं है कि क्या है। क्या तीर्थंकर कहते हैं, क्या साधु कहते हैं, क्या ज्ञानी कहते हैं, खबर नहीं और मान ले कि हम जैन हैं। यहाँ तारणस्वामी ना कहते हैं कि उसको हम जैन कहते नहीं। शोभालालभाई! प्रयत्न करना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। पैसे ऐसे ही पुण्य के कारण मिल जाते हैं, उसमें कुछ है नहीं। धूल में कुछ नहीं है, उसमें क्या है? पाँच-पचास करोड़, दो करोड़ मिले उसमें आत्मा में क्या आया? आत्मा में क्या आया? आत्मा में आयी ममता। वह चीज़ तो यहाँ आती नहीं। मुझे मिला, ऐसी ममता उसके पास आयी। बराबर है? अमरचन्दभाई! वह चीज़ उसके पास आती है? वह तो भिन्न रहती है। यथास्थान में है, उसके स्थान में है। उसे लगता है कि मैं करोड़ का आसामी हूँ, मैं पाँच करोड़ का (धनी हूँ), वह तो ममता हुई। ममत्व अर्थात् दुःख हुआ; दुःख अर्थात् आकुलता हुई। उसमें क्या आया? आकुलता आयी। क्यों, प्रेमचन्दजी! क्या आया? पैसे में आकुलता आयी। पैसे से नहीं, हों! उसकी ममता से।

कहते हैं, '**श्रावकं अव्रतं जैननः, संसार दुःख परान्मुखम**' एक गाथा में कितना भरा है! एक तो, सात प्रकृति जैन में होती है, दूसरे में होती नहीं। अमरचन्दभाई! सात प्रकृति। अनन्तानुबन्धी चार, मिथ्यात्व, मिश्र, ये अन्य में जैन के अलावा कहीं होती नहीं।

सर्वज्ञ भगवान ने मार्ग देखा, उसमें आत्मा की पर्याय में पहले मिथ्यात्व का दोष होता है, उसमें निमित्तरूप सात प्रकृतियाँ पड़ी हैं। उस प्रकृति का नाश कैसे होता है ? यहाँ तो, '**विच्छेदो**' कहा है। अपना शुद्ध भगवान ज्ञायकभाव चैतन्यसूर्य प्रकाशमय, जो पर्याय में मिथ्यात्वभाव है, उसका स्वभाव के आश्रय के मिथ्यात्वभाव का छेद हो जाता है। तो प्रकृति का छेद तो सहज हो जाता है। उसका नाम भगवान तीर्थंकर कहते हैं, ऐसे तारणस्वामी कहते हैं कि उसको हम जैन कहते हैं। दूसरे को जैन कहते नहीं।

'**संसार दुःख परान्मुखम**' ओहो.. ! सम्यग्दर्शन हुआ, तब से दुःख-आकुलता के परिणाम से समकिती परान्मुख है। समझ में आया ? परान्मुख नाम उल्टा है। अपने आत्मा में आनन्द है, इस आनन्द का अनुभव करनेवाला समकिती है।....याजी ! आहाहा ! समझ में आया ? अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसमें आनन्द में घुसकर दृष्टि में एकाकार होकर (अर्थात्) दृष्टि स्वभाव में एकाकार होकर सम्यग्दृष्टि जैन हुआ, वह दुःख से परान्मुख हुआ। आकुलता है, संयोग भी है, परन्तु दृष्टि में उससे परान्मुख हुआ। भाई ! ऐसा लिया। स्वभाव सन्मुख हुआ है।

'**संसार दुःख परान्मुखम**' देखो ! शब्द क्या लिया ? आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञायक है। उसके सन्मुख हुआ। सम्यग्दृष्टि जैन प्रथम भूमिका का। स्वभाव आनन्दमूर्ति भगवान, उसके सन्मुख हुआ और विकार से परान्मुख हुआ। आहाहा ! विकार और आकुलता होने पर भी एक ही क्षण में धर्मात्मा, अपना सच्चिदानन्दस्वरूप में सावधान / सन्मुख हुआ है और दुःख की आकुलता होने पर भी उससे परान्मुख हुआ है, विमुख हुआ है, अपना मुख मोड़ दिया है। अमरचन्दभाई ! ... लिया है। सम्यग्दृष्टि, अपना मुख पर—ऊपर जो मिथ्यात्व में अनादि का था, पुण्य और पाप मैंने किया, राग-द्वेष मैंने किये, संयोग मैं प्राप्त करता हूँ, संयोग मैं दूर करता हूँ, अपनी ज्ञान, दर्शन, वीर्य की जो अल्प पर्याय है, उतना मैं हूँ—ऐसी जो मान्यता मिथ्यात्व में—परसन्मुख में थी, वह जब अपना स्वभाव त्रिकाल ज्ञायक-सन्मुख हुआ तो संयोग, कर्म और राग, ऐसी आकुलता से अपना मुख मोड़ दिया है। आहाहा ! समझ में आया ? देखो ! एक ३३वीं गाथा में इतना कहा है। शोभालालभाई ! है या नहीं उसमें ? देखो ! आपको दिया, सेठ को हाथ में सामने दिया। बहीखाते के पत्र घुमाते हैं कि इस पन्ने पर क्या लिखा है ? तारणस्वामी क्या कहते हैं ? समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** यह सब जानना पड़े ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जाने बिना होता होगा ? संसार में जाने बिना माल लेने जाता होगा ? शक्कर लेने जाये वहाँ ऐसा कहे कि दूध चाहिए, तो ? शक्कर लेने जाना हो, सब्जी लेनी हो, सब्जी कहते हैं न ? पचास भाँति की सब्जी हो, सब्जी लेने जाये (और कहे कि), दाल दीजिये। सब्जी देगा ? जो सब्जी लेनी हो, उसका नाम ले, उसका ज्ञान करे तो सब्जी मिलेगी। लौकी सब्जी लाओ। रतनलालजी ! वहाँ जाकर कहे कि कपड़ा लाओ। पागल है। सब्जी की दुकान पर कपड़ा कहाँ से आया ? वहाँ भी उसका भान करना पड़ता है कि में सब्जी लेने आया हूँ। परन्तु सब्जी में पचास चीज़ है, वह नहीं। मैं तो लौकी लेने को आया हूँ। तो उसका ज्ञान दूसरे से भिन्न करना पड़ता है। ये नहीं, ये नहीं, करेला नहीं, तोरई नहीं, यह लौकी (चाहिए)। ऐसा करना पड़ता है या नहीं ? ऐसा ज्ञान किये बिना मिल जाता है ?

उसी प्रकार आत्मा, संयोग नहीं, राग नहीं, कर्म नहीं, अपूर्ण पर्याय जितना नहीं। मैं पूर्ण ज्ञायकभाव स्वभाव हूँ, ऐसा पर से भेदज्ञान करने से अपने स्वरूप का पता लगता है। उसके सिवा स्वरूप का उसे पता लगता नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि '**संसार दुःख परान्मुखम**'। ओहो.. ! भाषा कैसी की है ? शुद्ध दृष्टि अन्तर स्वभाव-सन्मुख (हुई) तो दुःख से परान्मुख हुआ। चिद् स्वभाव भगवान आत्मा के सन्मुख हुआ और विकल्प है सही, दुःख (है), अभी अविरत सम्यग्दृष्टि है। दुःख तो है, राग है, विषयभोग का राग है। परन्तु उस दुःख से दृष्टि परान्मुख है। स्वभाव में आनन्द सन्मुख दृष्टि है, दुःख पर उसकी दृष्टि है नहीं। उसका नाम अव्रत श्रावक जैन कहने में आता है। अब, व्रत तो बाद में (आयेंगे)। बारह व्रत का धारण करनेवाला श्रावक, वह तो बाद की बात है। पहले यह उसके पास होना चाहिए। यह नहीं है तो उसे श्रावक कहने में आता नहीं। कहो, समझ में आया ?

अब ३५३। सबमें आगे तीन आया है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन होते हैं या नहीं ? ३५३ है न। देखो !

**द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं, शुद्ध सम्यग्दर्शनम्।**
**ज्ञानमयं सार्थ शुद्धं, करणानुयोग चिंतनं ॥३५३॥**

है ३५३ ? देखो ! करणानुयोग की बात करते हैं, तारणस्वामी । करणानुयोग का अर्थ कर्म, कर्म का परिणाम, आत्मा का सूक्ष्म परिणाम क्या है, वह करणानुयोग में बात चलती है । द्रव्यानुयोग में तत्त्व की बात चलती है, करणानुयोग में परिणाम की सूक्ष्म बात चलती है, कथानुयोग में कथा चलती है, चरणानुयोग में पुण्य-पाप का अधिकार चलता है । पुण्य किसको और पाप (किसको कहना) । यहाँ चरणानुयोग में कहते हैं, '**द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं**' द्रव्यदृष्टि-द्रव्यार्थिकनय पूर्ण द्रव्य को देखनेवाली है । क्या कहते हैं ? देखो ! कभी पढ़ा है कि नहीं ? सेठ ! ना कहते हैं, रामजीभाई ना कहते हैं । समझ में आया ? क्या कहते हैं ?

**द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं, शुद्ध सम्यग्दर्शनम्** । द्रव्य अखण्ड मेरा । द्रव्य अर्थात् ये पैसे नहीं, हों ! आत्मा । वह कहते थे, यहाँ आये थे, मोहनभाई के रिश्तेदार थान से आये थे । लिखा है न ? द्रव्यदृष्टि ते सम्यग्दृष्टि । अपने वहाँ जैन स्वाध्यायमन्दिर में है न । द्रव्यदृष्टि ते सम्यग्दृष्टि । उसने कहा, महाराज ! ये पैसेवाला सम्यग्दृष्टि, ऐसा कहाँ से आया ? क्योंकि यहाँ पैसेवाले बहुत आते हैं । पैसेवाले पहले से बहुत आते हैं । लाखोंपति, करोड़ोंपति सम्यग्दृष्टि ? अरे... ! आपको खबर नहीं है । थानवाले माणेकचन्दभाई ! समझ में आया ? भाई ! द्रव्यदृष्टि (अर्थात्) ये आपके पैसे नहीं । शोभालालभाई !

यहाँ द्रव्य शब्द आया न ? '**द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं**' द्रव्य अर्थात् अपना स्वभाव-वस्तु त्रिकाल । उसे द्रव्य कहते हैं । एक समय में राग नहीं, निमित्त नहीं, एक समय की पर्याय नहीं और गुण-गुणी का भेद नहीं । मैं गुणी आत्मा हूँ और मेरे में ज्ञान, दर्शन, आनन्द है, ऐसा भी भेद नहीं । अभेद एकाकार द्रव्य स्वभाव त्रिकाल ज्ञायक है, उसको यहाँ द्रव्यदृष्टि कहते हैं । जो सम्यग्दर्शन का विषय द्रव्य; उसकी दृष्टि, उसका नाम सम्यग्दर्शन । समझ में आया ? आहाहा ! उसमें कोई भगवान भी काम करते नहीं और भगवान पर लक्ष्य करने से द्रव्यदृष्टि होती नहीं । शुभराग की क्रिया में लक्ष्य होने से भी द्रव्यदृष्टि होती नहीं । अपनी पर्याय का लक्ष्य करने से भी द्रव्यदृष्टि होती नहीं । गुण-गुणी का भेद करने से भी द्रव्यदृष्टि होती नहीं ।

आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, पूर्ण ज्ञान और आनन्द का धरनेवाला मैं आधार हूँ । और ये गुण मेरे में रहनेवाले आधेय हैं । शक्कर आधार है और शक्कर में सफेदपना, मिठास रहती है, वह आधेय है—ऐसा भेद भी जिसमें नहीं है । एक द्रव्यदृष्टि पूर्ण ज्ञायकमूर्ति...

सम्पूर्ण द्रव्यदृष्टि द्रव्यार्थिकनय पूर्ण द्रव्य को देखनेवाला है। क्या कहा ? द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण को देखनेवाली है। सम्पूर्ण शब्द पड़ा है न। समझ में आया ? देखो ! यह आत्मा का वास्तु होता है। सेठ ! द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण, ऐसा तारणस्वामी ३५३ गाथा में पुकार करते हैं। जिस दृष्टि में द्रव्य आया, वह दृष्टि सम्पूर्ण है। बाकी सम्पूर्ण नहीं, सब अपूर्ण है। समझ में आया ? अपनी पर्याय को मानना, वह भी अपूर्ण है। वह सम्पूर्ण नहीं। मात्र गुण के भेद को मानना, वह भी सम्पूर्ण नहीं। राग, पुण्य-पाप, दया, दान का विकल्प उठता है, उसको मानना, वह सम्पूर्ण नहीं। द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, परन्तु आज तो हिन्दी में एक ही व्याख्यान है न। बाद में थोड़ा ध्यान रखना, समझना।

'**द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं**' एक समय में भगवान पूर्ण, पूर्ण, पूर्ण अभेद एकरूप प्रभु, ऐसी दृष्टि को यहाँ पूर्ण—सम्पूर्ण कहते हैं। इस सम्पूर्ण की दृष्टि हुए बिना द्रव्यदृष्टि होती नहीं। और द्रव्यदृष्टि को ही सम्पूर्ण लक्ष्य में आता है, उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। लड़के घर पर वाँचन करते हैं या नहीं ? कहो, समझ में आया ? देखो ! द्रव्यार्थिनय पूर्ण द्रव्य को देखनेवाला है। द्रव्यार्थिकनय का अर्थ क्या है ? अपना जो द्रव्य त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति है, जिस ज्ञान का... द्रव्यार्थिक, द्रव्य अर्थात् वस्तु, अर्थ अर्थात् प्रयोजन है, जिस ज्ञान में द्रव्य प्रयोजन है, ऐसे ज्ञान को द्रव्यार्थिकनय कहने में आता है। बहुत सूक्ष्म। ...याजी ! कितने साल से सम्प्रदाय में हो, परन्तु द्रव्यार्थिक अर्थात् क्या ? द्रव्य अर्थात् क्या ? द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण अर्थात् क्या ? (यह ज्ञात नहीं होता)।

यह आत्मा का माणेकस्तम्भ है। मोक्षमण्डप डालने में सम्यग्दर्शन माणेकस्तम्भ है, शादी करते हैं न ? शादी। क्या करते हैं ? लकड़ी डालते हैं न ? स्तम्भ डालते हैं। चार बाजु लकड़ी (डालते हैं)। माणेकस्तम्भ कहते हैं न। शादी करते समय। चार लकड़ी है, चार गति में भटक। ऐसा कहते हैं न शादी में ? ऐसे यहाँ मोक्ष का माणेकस्तम्भ सम्यग्दर्शन में है। अमरचन्दभाई ! ये चार प्रकार का-दर्शन, ज्ञान, चारित्र और इच्छा निरोध का आराधन स्वभाव में, यह मोक्षमार्ग का माणेकस्तम्भ है। उन चारों में भी सम्यग्दर्शन पहले है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान नहीं, सम्यग्दर्शन बिना चारित्र नहीं, सम्यग्दर्शन बिना तप नहीं, सम्यगदर्शन बिना श्रावक नहीं, सम्यग्दर्शन बिना मुनि नहीं। सम्यग्दर्शन बिना व्यवहार से भगवान की भक्ति भी नहीं।

कहते हैं, **द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं, शुद्ध सम्यग्दर्शनम्**। इसी से शुद्ध सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। लो, यह लाभ। बनिये लाभ करते हैं न? कितने पैसे हुए? पचास हजार बढ़े, लाख या दो लाख? हिसाब करते हैं या नहीं? दशहरा कहते हैं न? क्या कहते हैं? विजयादशमी। दशहरा। हिसाब लिखने को जाते हैं। दिवाली आये तो हिसाब लिखना चाहिए न। वह लाभ कितना हुआ जड़ का, उसका मिलान करता है। आत्मा में क्या लाभ हुआ, वह बात यहाँ करते हैं। सम्यग्दर्शन का लाभ वही लाभ है। दूसरा कोई लाभ है नहीं। समझ में आया?

देखो! राग की मन्दता हुई, वह भी लाभ नहीं। लक्ष्मी प्राप्त हुई, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ लाभ नहीं; कुटुम्ब-कबीला बहुत हुआ, वह लाभ नहीं; अकेले व्रत, नियम का राग मन्द किया, वह भी लाभ नहीं। लाभ तो भगवान त्रिलोकनाथ उसे कहते हैं कि, वही यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि लाभ तो सम्यग्दर्शन का लाभ मिलना, वह लाभ है। समझ में आया? भगवान आत्मा देहदेवल में विराजमान परमानन्द की मूर्ति है। परमात्मा अपना निज स्वरूप। उसकी द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण करके अपने में सम्यग्दर्शन का लाभ होना, उसका नाम लाभ सवाया (है)। बनिये लिखते हैं या नहीं? लाभ सवाया, ऐसा कुछ लिखते हैं न? लक्ष लाभ। लक्ष लाभ यह। आत्मा का अन्तर लक्ष्य करने में सम्यग्दर्शन का लाभ होता है, यह लक्ष्य लाभ है, दूसरा कोई लाभ है नहीं।

कहते हैं, शुद्ध सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। शुद्ध शब्द प्रयोग किया है न? व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं। व्यवहारसम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन है नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह तो व्यवहार श्रद्धा है। वह सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? बाद में क्या कहते हैं?

'**ज्ञानमयं सार्थ शुद्धं**' ज्ञानमय यथार्थ शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। सम्यग्दर्शन में होता है क्या? होता है क्या? ज्ञानमय पदार्थ आत्मा। अकेला चैतन्यप्रकाश ज्ञायकमूर्ति देखने-जानने स्वभाव स्वरूप, ऐसा ज्ञानमय शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। सम्यग्दर्शन के लाभ में ज्ञानमय आत्मा का अनुभव होता है। राग का अनुभव छूटकर, थोड़ा हो भले, स्वभाव के अनुभव का लाभ (होता है)। ज्ञानमय आत्मा का आनन्द का लाभ होता है। ज्ञानमय यथार्थ शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। समझ में आया?

कैसा है आत्मा? ज्ञानमय यथार्थ शुद्ध आत्मा। ऐसा नहीं कहा है कि आत्मा आस्रवमय, रागमय, दया, दानवाला आत्मा, पुण्य-पापवाला आत्मा, कर्मवाला आत्मा, ऐसा नहीं (कहा है)। ज्ञान चैतन्यप्रकाश, मात्र ज्ञ-स्वभाव। ज्ञानप्रकाश। ज्ञान (अर्थात्) यह वाणी, पुस्तक, अक्षर नहीं, हों! अन्दर प्रकाश जो चैतन्य का ज्ञानमय है, वह ज्ञानमय शुद्ध पदार्थ, उसका अनुभव-भोगना होना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। श्रावक को चौथे गुणस्थान से वह शुरु होता है। समझ में आया?

करणानुयोग की चिन्ता का फल, भाई! ऐसे लिया है। देखो! करणानुयोग, करणानुयोग अकेला परिणाम-परिणाम करे, ऐसा नहीं। करणानुयोग के परिणाम का विचार कर और परिणाम को जाननेवाला त्रिकाल द्रव्य, उसका ज्ञान कर तो करणानुयोग की चिन्ता का फल कहने में आता है, नहीं तो कहने में आता नहीं। बहुत भेद आते हैं न? भेद। ऐसा किया, कर्म प्रकृति ऐसी है, इतना उदय आता है, ऐसा है। हो। सबका फल क्या? करणानुयोग की विचारधारा का फल क्या? १४८ प्रकृति है, आठ कर्म है, उसकी १४८ प्रकृति है, मिथ्यात्व में इतनी प्रकृति का उदय है, इतनी सत्ता है, इतनी उदीरणा और इतना विपाक। उसका फल क्या? कहते हैं न?

'**करणानुयोग चिंतनं**' करणानुयोग, परिणाम का स्व का और पर का परिणाम की विचारधारा में द्रव्यस्वभाव का लाभ होना उसका फल है। करणानुयोग में वीतरागता कहा न? चारों अनुयोग में वीतरागता कहा है या क्या? चारों अनुयोग का सार भगवान ने वीतरागता कहा है। पंचास्तिकाय। शास्त्र तातपर्य। १७२ गाथा, अपने अधूरी है। सब शास्त्र का तात्पर्य वीतरागभाव (है)। करणानुयोग में भी वीतरागता है। क्या? निमित्त, राग और अल्प पर्याय से हटकर स्वभाव पर दृष्टि दे, वह वीतरागता है। वह शास्त्र पढ़ने का फल है। अकेला कण्ठस्थ कर ले, लोगों को कहे, वह कोई शास्त्र का तात्पर्य है नहीं। '**करणानुयोग चिंतनं**'। करणानुयोग का चिन्तवन, वह उसका फल है। समझ में आया? बाद में, ३५६? ३५६।

**द्रव्यानुयोग उत्पाद्यं, द्रव्यदृष्टि च संजुतं।**
**अनन्तानन्त दिष्टन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं॥३५६॥**

क्या कहा? द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। द्रव्यानुयोग का अर्थ (यह

कि) आत्मा क्या है, परमाणु क्या है, विकार क्या है, ऐसा अभ्यास तत्त्वदृष्टि का करना चाहिए। द्रव्यानुयोग—द्रव्य जिसमें प्रधानपने है, उसका अभ्यास करना चाहिए। '**द्रव्यानुयोग उत्पाद्यं**' अभ्यास करना चाहिए। '**उत्पाद्यं**' का अर्थ है-अभ्यास करना चाहिए, इसमें सीधा है। '**द्रव्यानुयोग उत्पाद्यं**' है न शब्द ? भाई ! इसका अर्थ यह है। उत्पाद अर्थात् उत्पन्न करना। द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना। देखो ! चार अनुयोग में द्रव्यानुयोग का अभ्यास मुख्य आत्मा की दृष्टि प्राप्ति करने में वही अभ्यास मुख्य है। समझ में आया ?

'**द्रव्यदृष्टि च संजुतं**' साथ में द्रव्यार्थिकनय से शुद्ध आत्मा की दृष्टि भी प्राप्त करनी चाहिए। क्या कहते हैं ? अकेला अभ्यास-अभ्यास नहीं। अकेला द्रव्यानुयोग का अभ्यास कर लिया कि यह आत्मा है, ऐसा है, यह ऐसा है, वह तो परलक्ष्यी बात हुई। अपना आत्मा अन्तर वस्तु अखण्डानन्द प्रभु पूर्ण स्वरूप है, उसकी अन्तर्दृष्टि करके द्रव्यदृष्टिसहित अभ्यास करना, उसका नाम द्रव्यानुयोग का तात्पर्य है। समझ में आया ? द्रव्यदृष्टि भी प्राप्त करनी चाहिए। जिससे '**स्वात्मानं व्यक्त रूपयं अनन्तानन्त दिष्टन्ते**' क्या कहते हैं ? अपने शुद्ध आत्मा के समान जगत की अनन्तानन्त ... प्रगटरूप से दिखायी पड़े। क्या कहते हैं ? जिसकी राग और अल्पज्ञ आदि पर्याय की दृष्टि हटकर ज्ञायक पूर्ण स्वभाव की दृष्टि हुई, उसकी दृष्टि में अनन्त आत्मा परमात्मस्वरूप है, पर्याय को छोड़कर स्वभाव परमात्मा है—ऐसा उसको देखने में आता है। अमरचन्दभाई ! अपनी पर्यायदृष्टि छूट गयी तो दूसरे को देखने में पर्याय से नहीं देखकर उसका द्रव्यस्वभाव क्या है, अनन्तानन्त आत्मा, चौदह ब्रह्माण्ड....

यह क्यों कहा ? कोई एक ही आत्मा कहते हैं तो उसको चीज़ का भान नहीं है। वेदान्त आदि एक ही आत्मा कहते हैं। जैन में भी कितने ही कथन करते... करते... करते... करते एक में आ जाते हैं। ऐसा है नहीं। अनन्त आत्मा है, इसलिए सिद्ध किया है। अमरचन्दभाई ! कोई कहता है न कि यह अन्ततः तो वेदान्त में चला जाता है। एक व्यक्ति एक व्यक्ति नहीं, अनन्त व्यक्तिरूप एक। ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है। ऐसा है नहीं। लो में लो मिल जाती है, ऐसा भी नहीं है। अपना तत्त्व पर अनन्त आत्मा से भिन्न है। समझ में आया ? वह करते-करते चले जाते हैं, निश्चय का अभ्यास करते (मानने लगते हैं कि), एक आतमा है, वेदान्त जैसा हो गया, अनन्त में मिल गया। दृष्टि अनन्त में मिल गयी, उसका नाम सम्यक्। ऐसा है नहीं।

इसलिए तारणस्वामी (कहते हैं), जैन सर्वज्ञ परमात्मा ने, त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने जो अनन्त आत्मा देखे, अनन्त पदार्थ देखे, उसको साथ में सिद्ध करते हैं। समझ में आया? आपको ज्ञात नहीं होता, अध्यात्म की बात करते-करते ऐसी बात करे कि उसमें एक ही आत्मा रह जाये और अनन्त आत्मा का नाश हो जाए। बहुत अच्छी करते हैं, भाई! अच्छी बात करते हैं। मालूम नहीं है, भान नहीं है। सेठ! अध्यात्म की ऐसी बात करे कि ओहो..! अन्ततः तो एक है या नहीं? अन्ततः तो एक स्वरूप है या नहीं? है ही नहीं।

प्रत्येक आत्मा की अनादि की सत्ता भिन्न है और सिद्ध परमात्मा में अनन्त सत्ता भिन्न रहती है। कभी सिद्ध की सत्ता एक हो जाती नहीं। मोक्ष में भी पूर्णानन्द की प्राप्ति प्रत्येक आत्मा को हुई तो प्रत्येक सत्ता सिद्ध में भी भिन्न है। अनादि की भिन्न है, तो मुक्ति होने के बाद अपना नाश हो जाए या भिन्न सत्ता निर्मल रह जाए? निर्मल भिन्न सत्ता रहती है। तारणस्वामी कहते हैं कि **अनन्तानन्त दिष्टन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं**। अनन्त आत्मायें निर्मल पूर्ण ज्ञानघन हैं ज्ञायकभावरूप। क्यों? कि अपने आत्मा को पुण्य-पाप का विकल्प अर्थात् आस्रव से भिन्न जाना, कर्म से भिन्न जाना, वही आत्मा। तो सब आत्मा ऐसे हैं। कोई आत्मा रागवाला है और कोई मिथ्यात्वाला है, कोई कर्मवाला है, ऐसा नहीं है। क्योंकि आत्मा ऐसा है नहीं। समझ में आया? देवीलालजी! सब आत्मा कैसे हैं? देखो!

कल कहा था न? देवचन्दजी भी कहते हैं। 'प्रभु! तुम जाणग रीति सौ जग देखते हो लाल...' हे नाथ! हे सर्वज्ञप्रभु! आप सर्व जीव को शुद्ध देखते हो। 'निज सत्ताए शुद्ध सोने पेखता हो लाल..' हे परमात्मा! सब आत्मा की अन्तर निर्मल ज्ञायक, आनन्द की शक्ति को आप आत्मा कहते हो। आपने आत्मा को ऐसा देखा है। बराबर है? समझ में आया? तो सम्यग्दृष्टि को अपना जब राग और पर्याय के अंश की दृष्टि को छोड़कर स्वभाव की पूर्ण ज्ञायकभाव की दृष्टि हुई, ऐसे ही सब आत्मा ज्ञायकमय हैं, ऐसी मान्यता में देखते हैं। समझ में आया? पर्याय में अन्तर है, वस्तु में अन्तर नहीं है, अभव्य हो या भव्य हो, अनन्त संसारी हो या एकावतारी हो। समझ में आया?

**अनन्तानन्त दिष्टन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं**। क्या कहते हैं? शुद्ध आत्मा के समान। जगत की अनन्तानन्त आत्मायें प्रगटरूप से दिखलायी देती है। प्रगटरूप से का

अर्थ—वह पर्याय प्रगट है, उतना नहीं; उसका पूर्ण स्वरूप है। चिदानन्द ज्ञायकज्योति अखण्डानन्द पूर्ण परमात्मा, सब आत्मा ऐसे हैं। एकेन्द्रिय में भी ऐसा है, दो इन्द्रिय में भी ऐसा है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय तो काया और अल्प पर्याय का नाम (है), वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। वस्तु अकेली चैतन्यज्योति चौदह ब्रह्माण्ड में अनन्त आत्मा मात्र ज्ञायकभाव से भरे हैं, ऐसे अपनी पर्यायदृष्टि छोड़कर स्वभाव की दृष्टि हुई तो सब आत्मा को सम्यग्दृष्टि परमात्मा स्वभाव से देखते हैं। रतनलालजी! सुना ही नहीं।

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रगट, प्रगट। वस्तु प्रगट ही है। वस्तु है न? वर्तमान पर्याय प्रगट है न? वस्तु प्रगट नहीं है। परन्तु ज्ञानी ने अपने द्रव्य को श्रद्धा में प्रगट देखा तो सब आत्मा प्रगट शुद्ध हैं। ज्ञायक प्रगट है, अप्रगट है नहीं।

**मुमुक्षु :** अपने आत्मा को....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपना द्रव्य देखा न, इसलिए सबका द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव व्यक्त अर्थात् प्रगट निर्मल है, ऐसा ज्ञानी अपने को देखते हैं, ऐसा पर को देखते हैं। पर्याय को अपने में गौण की, तो दूसरे को देखने में पर्याय को गौण करके देखते हैं। ओहोहो! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वास्तु यह है। निश्चय वास्तु यह है न। (बाकी) वास्तु क्या है? किसी के मकान में और किसी के पत्थर में रहना, वह वास्तु है? सेठ!

**'अनन्तानन्त दिष्टन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं'** ३५६ (गाथा पूरी) हुई। ३५७।

**दिव्यं द्रव्यदृष्टिं च, सर्वज्ञं शाश्वतं पदं।**
**नन्तानन्त चतुष्टं, केवलं पद्म ध्रुवं॥३५७॥**

आहा..! कहाँ रहा है? आत्मा के कितने गुण गाये हैं! तारणस्वामी ने आत्मा के गाने कितने गाये हैं! उसमें रहे हुए को, सम्प्रदाय में रहे हुए को खबर नहीं। शोभालालभाई! कहना तो पड़े न। रतनलालजी! खबर नहीं क्या कहते हैं। अपने अमुक में हैं, अपने तारण समाज के कहलाते हैं। क्यों सेठ? परन्तु क्या कहते हैं, उसकी पहचान है? परमेश्वर जैन

त्रिलोकनाथ की वाणी जैसी आयी, उसका अनुभव करके, ज्ञान करके (नक्की) किया है कि भगवान कहते हैं, वही सत्य है। इसके सिवा अन्य कोई कहते हैं, वह तीन काल में सत्य नहीं है।

कहते हैं, **दिव्यं द्रव्यदृष्टिं च, सर्वज्ञं शाश्वतं पदं**। क्या कहते हैं? द्रव्यदृष्टि अपूर्व है। '**दिव्यं**' शब्द है न? द्रव्यदृष्टि '**दिव्यं**'। आहा..! समझ में आया? एक ज्ञायक परमानन्द परमात्मा अपने को देखना, वही दृष्टि दिव्य अर्थात् प्रधान है। है? अपूर्व है। दूसरी कोई दृष्टि को अपूर्व कहते नहीं। समझ में आया? अपूर्व। एक समय में भगवान अपना पूर्ण आनन्द ज्ञायक (है), ऐसी दृष्टि, वह अपूर्व दृष्टि है। समझ में आया? बाकी भगवान सच्चे हैं और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की दृष्टि, वह दृष्टि नहीं है। अमरचन्दभाई! वह तो व्यवहारदृष्टि हो गयी। ऐसा तो अनन्त बार माना है। अपना दिव्य स्वभाव, उसकी दृष्टि को ही यहाँ दिव्य दृष्टि कहते हैं। उसका नाम प्रधान, दिव्यता अर्थात् प्रधान दृष्टि है।

'**सर्वज्ञं शाश्वतं पदं**' क्या कहते हैं? जो अपने आत्मा को सर्वज्ञ अविनाशी पद में दिखाती है। क्या कहते हैं? द्रव्यदृष्टि को अपूर्व क्यों कहा? द्रव्यस्वभाव की दृष्टि को अपूर्व क्यों कहा? क्योंकि वह दृष्टि अपने में सर्वज्ञपद को दिखाती है। अपने में द्रव्यस्वभाव में सर्वज्ञपद को दिखाती है। पर सर्वज्ञ पर में रहे। समझ में आता है या नहीं? प्रेमचन्दजी! '**सर्वज्ञं शाश्वतं पदं**' अपने में सर्वज्ञपद शाश्वत अविनाशी ध्रुव (है), ऐसे पद को द्रव्यदृष्टि अपूर्व दिखाती है। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म तो है। आध्यात्मिक बात है या नहीं? श्रावकाचार की बात है। यह तो अभी श्रावकाचार की बात है। मुनिपना तो कहाँ रह गया।

कहते हैं, '**सर्वज्ञं शाश्वतं पदं**' यह दृष्टि दिखाती है। अपना निज अकेला ज्ञ-स्वभाव, जाननस्वभाव, पूर्ण ज्ञायक सर्वज्ञपद, वह दिव्य दृष्टि अपूर्व, वह सर्वज्ञ अपने निज पद को दिखाती है। इसलिए उस दृष्टि को अपूर्व दिव्यदृष्टि कहने में आयी है। कहो, जुगराजजी! समझ में आता है? यह जैनपना है। समझ में आया? कोई सम्प्रदाय में जैनपना रहता नहीं। कोई कपड़े में रहता नहीं। कपड़ा छोड़ने से भी जैनपना आ नहीं जाता। अन्तर में... आहाहा! '**सर्वज्ञं शाश्वतं पदं**' ध्रुव पद, ध्रुव पद। ध्रुव पद अविनाशी आत्मा

नित्यानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, अपना पूर्ण स्वरूप, उसको दृष्टि दिखाती है; इसलिए उस दृष्टि को अपूर्व अर्थात् दिव्यदृष्टि कहने में आयी है। दिव्य आँख, दिव्यदृष्टि, अपूर्व चक्षु। समझ में आया? यह आँख नहीं। ये तो मिट्टी की-धूल की है। अन्दर में पर को देखना, वह भी नहीं। अपने को पूर्ण देखना, उस दृष्टि को दिव्य और अपूर्व दृष्टि कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

'**नन्तानन्त चतुष्टं**' अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य केवल असहाय, परसंगरहित, निश्चय अविनाशी प्रफुल्लित कमल के समान विकसित निर्लेप झलकती है। क्या कहते हैं? ओहो! द्रव्यदृष्टि—वस्तु की दृष्टि—परमार्थ तत्त्व की दृष्टि को दिव्य क्यों कहने में आयी है? कि अपने में अनन्त ज्ञान (है)। शाश्वत तो कहा ध्रुव, परन्तु ध्रुव में शाश्वत में अन्दर में क्या रहा है? बेहद ज्ञान, बेहद दर्शन, बेहद आनन्द, बेहद वीर्य (रहा है)। आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और वीर्य (है), ऐसा वह दिव्य दृष्टि दिखाती है। ओहोहो! नरभेरामभाई!

केवल सहाय। कहते हैं, केवल—अकेला ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य का पिण्ड, उसका स्वभाव अनन्त अपार अमर्यादित (है), ऐसा वह दृष्टि दिखाती है। केवल परसंगरहित। रागरहित, कर्मरहित, शरीररहित। देखो! अबद्धस्पृष्ट। भगवान आत्मा पर से बन्ध नहीं, पर से मिला नहीं, पर का संग नहीं—ऐसा परमानन्द अपना स्वरूप, उसको दृष्टि दिखाती है, इसलिए उस दृष्टि को दिव्य अर्थात् अपूर्व कहने में आया है। समझ में आया?

'**पदम्**' प्रफुल्लित कमल के समान विकसित निर्लेप झलकती है। कमल है न? कमल। वह पहले संकुचित होता है, फिर विकसित हो जाता है। दृष्टि दिखाती है कि अपना स्वभाव अन्दर पूर्ण पड़ा है, उस पूर्ण में अभ्यास करने से उसका विकास केवलज्ञान में हो जाता है। जैसा अन्दर में केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्द दिखाती है, उस दृष्टि के विषय में अभ्यास करते-करते कमल जैसे खिल जाता है, वैसे अपना अनन्त चतुष्टय खिल जाता है। ऐसा वह दृष्टि दिखाती है। समझ में आया? ऐ... सेठी!

ऐसा कहकर क्या कहा? कि कोई राग की क्रिया या कोई व्यवहार की क्रिया से आत्मा प्रफुल्लित होता है, ऐसा नहीं है। दृष्टि ऐसा नहीं देखती है। रतनलालजी! समझ में

आया ? चश्मा-बश्मा नहीं है ? भूल गये ? कहो, समझ में आया ? देखो ! एक गाथा में कितना कहते हैं ! '**नन्तानन्त चतुष्टं, केवलं पद्म ध्रुवं**' दृष्टि ऐसी मनाती है कि कमल समान आत्मा प्रफुल्लित पड़ा है। पूर्ण अनन्त चतुष्टमय, उसमें अन्तर एकाकार होने से वह प्रगट हो जाता है। कोई राग की क्रिया या दया, दान, व्यवहार सम्यग्दर्शन, चारित्र से प्रगट होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? अपने स्वभाव की अन्तरदृष्टि का विषय करने से, उसमें रहते, रहते, रहते शक्ति में जो अनन्त चतुष्टय पड़ा है, वही पर्याय में अनन्त चतुष्टय प्रगट हो जायेगा। कारण में से कार्यरूप हो जायेगा। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं कि '**केवलं पद्म ध्रुवं**'। अकेला विकसित निर्लेप। भगवान अन्दर निर्लेप अपना शुद्ध है, ऐसा दृष्टि देखती है और पर्याय में भी ऐसा निर्लेप अभ्यास करने से हो जाएगा। कोई दूसरे का अभ्यास करके, व्यवहार करते-करते, निमित्त का संग करके केवलज्ञान अर्थात् मुक्ति होगी, ऐसा है नहीं। ऐसा दृष्टि दिखाती नहीं। भाई ! दृष्टि ऐसा नहीं दिखाती है। आहाहा ! अपना त्रिकाल अनन्त चतुष्टय अन्दर पड़ा है, उसे दृष्टि दिखाती है और वह चतुष्टय अन्दर में से एकाकार होकर प्रगट होता है। दूसरी कोई क्रिया उसकी है नहीं। विकल्प, दया, दान और व्यवहार-फ्यवहार प्रगट होने में कारण-फारण है ही नहीं। मूलचन्दभाई ! आहाहा ! उसका नाम द्रव्यदृष्टि, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम धर्म का प्रथम पाया-धर्म की नींव-धर्म की प्रथम नींव। बाद में श्रावकपने का व्रत का विकलप उठता है। जब उसकी स्थिरता विशेष होती है, तो वहाँ श्रावकपना उसको पंचम गुणस्थान योग्य दशा होती है। विकल्प उठता है, उसको व्यवहार कहते हैं। स्थिरता होती है, उसको निश्चय कहते हैं। श्रावक के आचार का वर्णन करने से पहले दृष्टि का वर्णन ऐसा किया है। ऐसी दृष्टि नहीं हो तो श्रावकपना सच्चा कभी होता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

**२**

**असोज शुक्ल ९, बुधवार, १४-१०-१९६४**
**श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार**
**गाथा-४३, ४४, ४५, ४९, ६०, प्रवचन - १९**

यह एक तारणस्वामी रचित श्रावकाचार है। उसमें श्रावक का आचार क्या है? श्रावक का आचरण कैसा होता है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? देखो, श्रावक किसको कहते हैं? सम्प्रदाय नहीं। वास्तविक वस्तु का स्वभाव सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ जिनागम में जो वर्णन करते हैं, ऐसा वस्तु का स्वरूप परमात्मा है, ऐसा अन्तर अनुभव करे उसको श्रावक का आचार कहने में आता है। बाहर की क्रिया आदि हो, राग की मन्दता आदि हो, वह कोई श्रावकाचार नहीं है।

**मुमुक्षु :** व्यवहार आचार।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार है, उसको कोई परमार्थ नहीं है। यहाँ परमार्थ की बात चलती है। देखो!

**कर्म अष्ट विनिर्मुक्तं, मुक्ति स्थानेय तिष्ठते।**
**सो अहं देह मध्येषु, यो जानाति सः पंडितः ॥४३॥**

**मुमुक्षु :** बहुत स्पष्ट है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, स्पष्ट है।

'**कर्म अष्ट विनिर्मुक्तं**'। आठ कर्म है, आठ कर्म जड़ मिट्टी। उसमें प्रकृति (होती है)। ज्ञानावरणी की पाँच, दर्शनावरणी की नौ, ऐसी बहुत प्रकृतियाँ हैं। एक-एक प्रकृति में अनन्त-अनन्त परमाणु का पिण्ड है, ऐसे आठ कर्म है, उसका यहाँ पहले थे, ऐसी प्रतीति करवायी है। पहले से आत्मा सिद्ध समान ही पर्याय में था, ऐसा नहीं है। समझ में

आया? पहले से अनादि से आत्मा आठ कर्म के सम्बन्ध बिना का था, ऐसा नहीं। अनादि से प्रत्येक आत्मा... अनन्त आत्मा हैं, तो आठ कर्म का निमित्त-नैमित्तिक उसको सम्बन्ध है।

कर्म से संसार नहीं, विकार नहीं, विकार से कर्म नहीं। परन्तु अपनी चीज़ कर्म कर्म में है और विकार विकार की पर्याय में है। ऐसा अनादि का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। ऐसा स्वीकार किये बिना आठ कर्म का नाश और सिद्धपद की प्राप्ति होती नहीं। '**कर्म अष्ट विनिर्मुक्तं**' आठों कर्म से रहित। पहले सहित था। देखो! यहाँ श्रावकाचार की बात चलती है। नहीं तो गृहस्थाश्रम में तो बड़ा राज-पाट होता है, सब होता है। हो, वह कहाँ श्रावकपना है, उसमें कहाँ श्रावकपना रुक गया है?

श्रावक का आचार तो उसको कहते हैं कि अपना आत्मा, जैसे सिद्ध भगवान अष्ट कर्म से विनिर्मुक्त हैं और '**मुक्ति स्थानेय तिष्ठते**' सिद्धक्षेत्र में विराजमान हैं। है न? तो उतना सिद्ध किया कि सिद्धक्षेत्र है। वहाँ मुक्ति में परमात्मा अपने स्वरूप में विराजमान है। कोई कहे कि सब आत्मा एक ही है और मुक्ति यहीं हो जाएगी, ऐसी बात है नहीं। '**मुक्ति स्थानेय तिष्ठते**'। जैसा सिद्ध करने से क्षेत्र सिद्ध किया। पण्डितजी! एक तो आठ कर्म का सम्बन्ध था, अब तोड़कर अपने स्वभाव की पर्याय की प्राप्ति कर, '**मुक्ति स्थानेय तिष्ठते**' ऊर्ध्व लोक में तिष्ठ अर्थात् विराजमान है। उसके सिवाय दूसरा कहे कि सर्व व्यापक हो जाए, ऐसा हो जाए, वह आत्मा का या सिद्ध का या द्रव्य का कोई स्वरूप उसने जाना नहीं।

'**सो अहं देह मध्येषु**' दो पंक्ति में सिद्ध की बात कही। ऐसा ही '**अहं देह मध्येषु**' वह भी आकाश में है। यहाँ भी आकाश में है। समझ में आया? सब साथ में अनन्त परमाणु पुद्गल मध्य में है। यहाँ भी आत्मा शरीर, कर्म के मध्य में है। परन्तु है उससे भिन्न। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** कब की बात है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वर्तमान बात है। डालचन्दजी!

सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को वर्तमान में '**सो अहं देह मध्येषु**' सर्वव्यापक आत्मा नहीं है, यह भी सिद्ध किया। '**देह मध्येषु**' देह में अन्दर है। अनन्त देह सबका

भिन्न-भिन्न है। कार्माण, तैजस, औदारिक आदि असंख्य शरीर है। मेरा यह देह है, ऐसा कहने में आता है, तो देह है। कार्मणशरीर अन्दर है, औदारिकशरीर है, तैजसशरीर है, सब है। ऐसी अस्ति प्रतीत करके मैं देह के अन्दर अहं सिद्ध समान मेरी चीज़ है। आकाश में, जैसे उस आकाश में भगवान वहाँ विराजते हैं, इस आकाश में मेरा परमात्मा मेरे स्वभाव में है। मैं तो बिल्कुल शुद्ध, राग-द्वेष के सिवाय और भेद बिना की अभेद चीज़, ऐसा मैं आत्मा हूँ, ऐसा जिसको सम्यग्दर्शन हो, उसका नाम श्रावकाचार कहने में आता है। डालचन्दजी! ये बाह्य क्रिया की, ऐसा किया, फलाना किया, दया पाली, व्रत किया वह श्रावकाचार है ही नहीं।

भगवान आत्मा अपना निज स्वरूप, सिद्धपद स्वरूप ही अपना स्वरूप है, अपने स्वभाव में और सिद्ध में, उनकी पर्याय प्रगट है, यहाँ प्रगट नहीं है, परन्तु स्वभाव तो मेरा ऐसा ही पूर्ण है। वर्तमान में मेरी विद्यमान शक्ति में मैं पूरा पूर्ण आठ कर्म से रहित, मलिनता से रहित, पूर्ण शुद्ध मैं देह में विराजमान ऐसा जो जानन .... '**यो जानाति**' ऐसे जो अनुभवता है। '**जानाति**' का अर्थ ये है। समझे? '**यो जानाति**' ऐसा मेरा आत्मा पर आत्मा से भिन्न, आठ कर्म से भिन्न (है)। यह बात उन्होंने बारम्बार बहुत ली है। कोई उसकी कीमत निकाल देते हैं। एक ही बात बारम्बार की है। लेकिन वह तो अध्यात्म की भावना में बारम्बार यह बात आती है। समझ में आया? आये। कहते हैं न, कितने ही पण्डित लोग कहते हैं। बारम्बार एक ही बात करते हैं, बारम्बार एक ही (बात करते हैं)। परन्तु एक ही पर्याय, अनादि काल से वही पर्याय प्रगट, प्रगट, प्रगट करती हुई चली आयी है। सिद्ध में भी एक समय में पर्याय अनन्त... अनन्त... अनन्त... वैसी ही चली आती है, तो उसमें पुनरुक्ति है? समझ में आया? पण्डितजी! श्रावकाचार आदि सबमें एक ही बात अनेक बार की है। परन्तु अध्यात्म सम्बन्धी साधारण बात में विस्तार नहीं आता। विस्तार तो बहुत गम्भीर अन्दर में गहराई में स्वाध्याय करने से आता है। यहाँ तो साधारण अध्यात्म की भावना है। उसमें गहराई की बात सामान्य क्या है, विशेष क्या है, अनन्त गुण क्या है, उसकी शक्ति की पर्याय कितनी है, उस पर्याय का अविभाग प्रतिच्छेद कितना है, वह बात उसमें नहीं आती। समझ में आया? वह तो यहाँ टूंकाण में... टूंकाण में क्या कहते हैं? संक्षेप में (करते हैं)।

**'यो जानाति सः पंडितः।'** दूसरा कोई ज्ञान नहीं हो, शास्त्र का भी ज्ञान नहीं हो। समझ में आया? दूसरा कोई नहीं हो, परन्तु ये मेरा आत्मा अन्तर में, जैसे मूँगफली में मूंगी पड़ी है, मूँगफली आदि, मूँगफली... ऐसे आत्मा शरीर की फली में और पुण्य-पाप के छिलके में, पुण्य-पाप के छिलके में, पुण्य-पाप का विकल्प दया, दान, ब्रह्मचर्य आदि पालने का विकल्प आदि सब छिलका है। उस छिलके के मध्य में मैं ही आत्मा पूर्ण शुद्ध सिद्ध समान हूँ, ऐसा जानता है। जानता का अर्थ—अनुभव करता है। जानता का अर्थ वह है। समझ में आया? ऐसा पहिचानता है। पहिचानता का अर्थ—अपनी ज्ञानपर्याय से पूर्णानन्द में एकाकारता से अनुभव आनन्द का करता है, वही आत्मा पण्डित कहने में आता है। कहो, समझ में आया? बाकी सब (थोथा है)। यहाँ तो भाई ने थोड़ा अर्थ किया है, जड़ है, मूर्ख है। ऐसा अर्थ किया है, हाँ! देखो! ... योगसार का .. जड़ कहा है। देखो! योगसार की गाथा है न? जो कोई आत्मा को नहीं पहचानता है, वह शास्त्र को पढ़ते हुए भी जड़ है।... योगसार में। शास्त्र पढ़ते हुऐ भी... शास्त्र हाँ, दूसरा पढ़ना तो कहीं दूर रहा गया, अज्ञान है। परन्तु शास्त्र वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का कहा हुआ, पढ़ते हुए भी ... जड़ जैसा (है)।

आत्मा आनन्दमूर्ति राग से, पुण्य से, विकार से, व्यवहार से भिन्न और देह से तो भिन्न है ही। अपना अन्दर आकाश में अपना सिद्ध स्वरूपी अपने में पूर्ण है। ऐसा अन्तर में अनुभव नहीं करता, उस शास्त्र के पढ़नेवाले को भी जड़ कहने में आया है। पण्डितजी! ये तारणस्वामी कहते हैं कि यह अनुभव करे वह पण्डित है, बाकी मूर्ख है। नथुलालजी समझ में आया कि नहीं? यह गृहस्थाश्रम की बात चलती है, हों! गृहस्थाश्रम में रहने पर भी, हजारों रानियों के संग में रहने पर भी, अरबों के व्यापार में रहते हैं, ऐसा दिखने पर भी जो कोई अन्दर आत्मा में ज्ञानानन्द सिद्ध समान मेरा स्वरूप है, मैं ही सिद्ध हूँ, ऐसा जानता है-अनुभवता है-उसको यहाँ पण्डित, ज्ञानी, तत्त्वज्ञानी, विचिक्षण, समझवान, उसको कहने में आता है। संसार के डहापण को उड़ा दिया। क्या कहते हैं? डहापण कहते हैं? चतुराई। संसार की चतुराई को उड़ा दी। शास्त्र की चतुराई भी काम नहीं करे। शास्त्र तो भिन्न है। शास्त्र कुछ जानता नहीं कि आत्मा क्या है। समझ में आया? समयसार में आयेगा, ... शास्त्र क्या जाने कि आत्मा क्या है। उसको कहाँ खबर है। ये तो पन्ने, पुस्तक पुद्गल

की पर्याय है। समझ में आया? शास्त्र में कहा हुआ भाव कि मेरा आत्मा सिद्ध समान है, ऐसा अनुभव दृष्टि में लेकर साथ में वेदन करता है, वही पण्डित और ज्ञानी कहने में आता है।

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह पाँचवाँ गुणस्थान और चौथे गुणस्थान में लागू पड़ता है। चौथा गुणस्थान और पंचम गुणस्थान को यह लागू पड़ता है। लागू पड़ता है, कहते हैं न? लागू पड़ता है। उसमें क्या है? गुजराती में लागू पड़ता है, ऐसा कहते हैं। अनुरूप होते हैं। चौथे, पाँचवें गुणस्थान को यह अनुरूप है। उसकी बात चलती है यहाँ। छट्ठे (गुणस्थान) मुनि की बात यहाँ नहीं है। उनकी दशा तो दूसरी है।

यहाँ तो अपना आत्मा 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' 'चेतन रूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो।' हो, शरीर हो, वाणी हो, कर्म हो, सब हो। मेरी चीज़ में वह नहीं, ऐसा विकल्प रहित अन्तर दृष्टि का अनुभव हो, उसका नाम ज्ञानी शास्त्रकार पण्डित कहते हैं। कहो, समझ में आया? उसमें तो उतने बोल लिये कि पहले आठ कर्म थे। अभी भी है, फिर भी मेरी चीज़ में नहीं है। मेरी पर्याय अल्पज्ञ और विकार है, फिर भी मेरी चीज़ में अल्पज्ञ और विकार नहीं है, और पर्याय में निर्विकार में पूर्णानन्द की पर्याय मैं सिद्ध समान हूँ, ऐसा अनुभव करके पर्याय में आनन्द की पर्याय प्रगट होती है। तो तीनों बोल आ गये। द्रव्य-वस्तु; गुण-शक्ति; उसमें ... ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से पर्याय में-अवस्था में-हालत में-आनन्द का अनुभव हो, उसका नाम पर्याय-हालत कहते हैं। उसको पण्डित कहते हैं। समझ में आया? ४४।

**परमानन्द सं दृष्टा, मुक्ति स्थानेय तिष्ठते।**
**सो अहं देह मध्येषु, सर्वज्ञं शास्वतं ध्रुव॥४४॥**

पहले ऐसा लिया था, आठ कर्म से विनिर्मुक्त लिया था। और मुक्तिस्थान में तिष्ठते ऐसा लिया था। अब कर्म नहीं लेते हुए, '**परमानन्द सं दृष्टा**' ऐसा लिया है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस, उस दशा की बात ली है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

क्या कहते हैं ? ओहो.. ! '**परमानन्द सं दृष्टा**' परमानन्द का अनुभव करनेवाले सिद्ध भगवान। '**सं दृष्टा**' अर्थात् अनुभव करनेवाले। पहले में लिया था कि आठ कर्म रहित सिद्ध भगवान मुक्ति स्थान में तिष्ठते हैं, ऐसा लिया था। अब, अष्ट कर्म का अभाव होकर जो पर्याय उत्पन्न हुई, उसको यहाँ ली है। '**परमानन्द सं दृष्टा**' जो सिद्ध परमात्मा अपना अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, '**सं दृष्टा**' नाम देखते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं। देखते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं परमानन्द का।

'**मुक्ति स्थानेय तिष्ठते**' मुक्ति स्थान में ऊर्ध्वलोक में विराजमान, ऐसे अनन्त सिद्ध विराजमान हैं। एक नहीं, अनन्त सिद्ध विराजमान (हैं)। अशरीरी, लोकाग्र शिखर पर, पीछे अलोक खाली है, लोक के अग्र (स्थान में विराजमान हैं)। चौदह ब्रह्माण्ड है, उसमें अग्र में अनन्त सिद्ध विराजमान (है)। परमानन्द का अनुभव करनेवाले जो वहाँ विराजमान हैं, '**सो अहं देह मध्येषु**' वही परमानन्द का अनुभव करनेवाला मैं ही आत्मा हूँ। मैं शरीर का अनुभव करनेवाला नहीं, राग-द्वेष का अनुभव करनेवाला नहीं। समझ में आया ? यह श्रावक की बात चलती है। ऐसा श्रावकपना ? व्यवहार कहते हैं। नाम क्या है ? श्रावकाचार नाम है। ये आचार है, दूसरा आचार क्या है ? भक्ति, पूजा, स्मरण आदि सब तो शुभराग है। वह वास्तविक श्रावकाचार है नहीं। वह व्यवहार आचार पुण्यबन्ध का कारण है। वह वास्तविक आचार है नहीं। डालचन्दजी !

परमानन्द का अनुभव करनेवाला, भगवान मुक्तिस्थान में मोक्ष क्षेत्र में विराजमान है। ऊपर है। वह भी सिद्ध किया। परमानन्द का अनुभव करते-करते विराजते कहाँ है ? ऊपर क्षेत्र में है। सर्व व्यापक हो जाये (ऐसा नहीं है)। कहते हैं न ? अनन्त में अनन्त मिल जाये ! मोक्ष होने के बाद भिन्न कहाँ रहना ? वहाँ भी चौका भिन्न ? सिद्ध में भी प्रत्येक आत्मा की सत्ता भिन्न ? भिन्न है। पण्डितजी ! सिद्ध भी प्रत्येक आत्मा भिन्न हैं। लोगों को जैन सर्वज्ञ परमात्मा क्या कहते हैं, खबर नहीं है आगम की और त्तव की, ... लगा दे। परमात्मा तो एक में अनन्त मिल जाए, सिद्ध होने के बाद भिन्न कहाँ है ? डालचन्दजी !

सिद्ध है या नहीं ? सिद्ध अनन्त हुए हैं या नहीं ? छह महीने और आठ समय में ६०८ मुक्ति में जाते हैं। वहाँ एक हो जाए। ज्योति में ज्योति मिल गयी। ऐसा है या नहीं ? ... ऐसा नहीं है, कहते हैं। अज्ञानी कहते हैं। मूढ़-तत्त्व के अनभिज्ञ कहते हैं कि सिद्ध में

ज्योत में ज्योत मिल गयी। फिर अलग कहाँ रहे ? क्या सत्ता यहाँ संसार में भिन्न थी ? संसार का नाश हुआ कि सत्ता का नाश हुआ ? मुक्ति में एक में दूसरा मिल जाए तो अपनी सत्ता का नाश हुआ। मुक्ति का अर्थ तो संसार का नाश होना। विकारी पर्याय का नाश होना, निर्विकारी परमानन्द का उत्पन्न होना। इसलिए वह शब्द लिया है, '**परमानन्द सं दृष्टा**' पण्डितजी ! तुम भी बराबर समझे बिना ऐसे ही चले हो। बराबर है या नहीं ? फुरसत नहीं मिलती, धन्धा-पानी... क्या कहते हैं, (समझने की फुरसत नहीं)। ओलम्भा है, पण्डितजी ! उसका कैसा अर्थ करना और... सामनेवाला कहे, सिद्ध में .. हाँ। सब एक ही हो जाते हैं, बराबर है। वहा भिन्न रहे तो राग हो जाए। अहंपना अलग रहे तो राग हो जाए। अरे.. ! सुन तो सही।

देखो ! '**अहं**' शब्द तो आया यहाँ। राग नहीं है। '**अहं देह मध्येषु**', '**अहं देह मध्येषु**' अरे.. ! दूसरे से भिन्न करके अहं करना तो अभिमान है। ऐसा नहीं है, सुन तो सही, तुझे खबर नहीं। समझ में आया ? इसलिए शब्द रखा है। '**अहं**' मैं मेरा आत्मा '**अहं**' अनन्त आत्मा से भिन्न, अनन्त परमाणु से भिन्न। जैसे सिद्ध भगवान विराजते हैं ... के स्थान में, एक-एक सत्ता अपनी भिन्न, अनन्त सत्ता सिद्ध रखते हैं। ऐसा '**अहं**'। देखो ! दोनों में '**अहं**' शब्द पड़ा है न ? कोई ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि अहं करने से तो उसमें अभिमान आ जाता है। इसलिए सब एक मैत्री का अर्थ क्या ? पण्डितजी ! विश्वमैत्री का अर्थ क्या ? उसे भी भान नहीं और सुननेवाले को भान नहीं। बराबर है। एक हो जाओ, एक हो जाओ। एक बिना निर्विकल्पता नहीं होती। ... होता है, अभिमान होता है। अपनी ...स्वतन्त्र मानने में अभिमान होता है। यहाँ तो तारणस्वामी कहते हैं, '**अहं मध्येषु**' अनुभव करने से आनन्द होता है। सेठ ! डालचन्दजी ! समझ में आया ? अहं मैं भिन्न हूँ। कर्म से, शरीर से, विकार से, अनन्त आत्मा से मेरी चीज़ अन्दर में अहं, देखो न ! शुद्ध जैसे सिद्ध हैं मुक्ति स्थान में, वह भी भिन्न-भिन्न अपनी सत्ता रखते हैं, ऐसे मैं भी मेरी सत्ता महा स्वभाव पर अनन्त आत्मा से, अरे.. ! अनन्त सिद्धों से और अरिहन्तों से, कर्म से, विकल्प से और मन से मेरी सत्ता अन्दर भिन्न (रखता हूँ)। अन्तर में ऐसा मानता है, अनुभवता है, जानता है। क्या कहा ? ... उसमें पण्डित किया था। ४३ में। '**यो जानाति स पंडिता**' दो शब्द में ... ऐसा लिया। यहाँ दूसरा लिया। हेतु है।

'**सर्वज्ञं शास्वतं ध्रुव**' मैं ही सर्वज्ञ शाश्वत ध्रुव हूँ।... कठिन बात है। निवृत्ति लेकर थोड़ा अभ्यास करना चाहिए। बराबर है या नहीं? संसार का अभ्यास करते हैं, तो ये थोड़ा करना चाहिए या नहीं? हम तारण समाज में है। परन्तु तारणस्वामी क्या कहते हैं, (इसकी) खबर बिना तारणस्वामी कहाँ से आया? सेठ! '**सो अहं देह मध्येषु**' इतना भिन्न किया। परमानन्द पहले पर्याय में नहीं था, सिद्ध हुआ तब परमानन्द का पूर्ण अनुभव हो गया। और परमानन्द का अनुभव होने पर भी मुक्ति स्थान में अपना अस्तित्व भिन्न रखकर रहते हैं। '**तिष्ठते**'। अपना अस्तित्व भिन्न रखकर रहते हैं। किसी के अस्तित्व में मिल जाते नहीं।

'**सो अहं देह मध्येषु**' मैं भी भिन्न हूँ। ऐसा नहीं है कि सर्व एकाकार है। ऐसा बहुत लोग कहते हैं, ... गप्प मारते हैं और सुननेवाले को खबर नहीं। सब एक ही है, भैया! ऐसा अहं व्यक्तिपना अपना भिन्न करने से अभिमान आ जाता है। छोड़ दो अहंपना, एब एक है। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? इसलिए तारणस्वामी कहते हैं कि '**सो अहं**' मैं मेरा आत्मा पर से भिन्न अनन्त गुण का पिण्ड मैं अकेला पर से भिन्न हूँ। यह श्रावक की बात करते हैं, हों! श्रावक के आचार की बात है। साधु की बात तो अलग है। बहुत अलग है।

'**सर्वज्ञं शास्वतं ध्रुव**' क्या कहते हैं? सर्व को जाननेवाला अविनाशी। मैं तो सर्व को जाननेवाला मैं ही आत्मा हूँ। सर्वज्ञ क्यों रखा? एक ही आत्मा हो तो सर्व को जाननेवाला नहीं रहता। अनन्त आत्मा हैं, अनन्त परमाणु हैं, छह द्रव्य हैं और अपना आत्मा पूर्णानन्द आदि-अनन्त गुण का पिण्ड है। सबको जाननेवाला मैं हूँ अन्दर में सर्वज्ञपद। समझ में आया? कितने ही कहते हैं, सर्वज्ञ तो पर को जाने। पर को जाने तो व्यभिचार हो जाए। पर को नहीं जाने और आत्मा को जाने तो छह द्रव्य है, उसे तो जानते नहीं। जानते नहीं, ऐसा कौन कहता है? तीन काल, तीन लोक के अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण, अनन्ती पर्याय सर्वज्ञ अपनी एक समय की पर्याय में जानते हैं। अपनी पर्याय की पूर्णता की प्राप्ति को जानने से पर को जान लेते हैं। समझ में आया? वह सिद्ध करते हैं कि मेरा आत्मा ही सर्वज्ञ है। ऐसा है तो पर्याय में शक्ति में से व्यक्तता होगी। व्यक्तता समझे? प्रगट।

मैं ही सर्वज्ञं, सर्वज्ञं। मेरा अन्तर ज्ञानस्वभाव मेरे साथ अनन्त सर्व को जाननेवाली शक्ति मेरी आत्मा में पड़ी है। और ऐसा मैं वर्तमान सर्वज्ञपद का अनुभव करनेवाला हूँ। समझ में आया? आहाहा! एक-एक आत्मा सर्वज्ञ। ऐसे अनन्त आत्मा सर्वज्ञ। समझ में

आया ? एक घड़े के पानी में हजार घड़े का पानी समा जाता है ? एक आत्मा में सर्व ज्ञान समा जाता है ? ... एक घड़े का पानी है, उसमें हजार घड़े का पानी.. घड़ा समझते हो ? आ जाता है ? नहीं। तो एक सर्वज्ञ में क्या सर्व का ज्ञान आ जाता है ? नहीं। ऐसा नहीं है। सुन तो सही। ज्ञान तो सर्वज्ञ आत्मा में एक समय में तीन काल, तीन लोक, अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु भिन्न-भिन्न सत्ता का भान आत्मा सर्वज्ञ में कर सकता है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह किसकी बात चलती है ? ऐसा ही है, ऐसा है। पामर और अल्पज्ञ और राग और शरीरवाला मान रखा है, वह भ्रान्ति और भ्रम है। समझ में आया ? लाख, करोड़ आदमी हो... दृष्टान्त देते हैं सर्वज्ञ को उड़ानेवाला, सर्वज्ञ एक आत्मा ? सर्व, सर्व, तीन काल—तीन लोक, अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, एक द्रव्य में अनन्त गुण हैं, एक-एक द्रव्य में, सबको जाने ? अनन्त पर्याय तीन काल की जाने ? एक घड़े में ... पानी नहीं रहता, ऐसे सर्व का ज्ञान नहीं होता। अरे.. ! सुन तो सही। ... समझ में आया है ? घड़ा तो स्थूल की बात करते हैं। ...

आत्मा ज्ञानानन्द है। सुनो ! ... ख्याल में आया या नहीं आत्मा ज्ञानानन्द है ? इतना ख्याल में आया है या नहीं, ... का भी आत्मा ज्ञानानन्द है, ऐसा ख्याल में सब आत्मा है, ये तो ख्याल में आता है या नहीं ? क्या कहा ? आत्मा ज्ञानानन्द है। कहते हैं, .. समा जाता है ? सुन तो सही। ... सच्चिदानन्द प्रभु, एक आत्मा मेरा पूर्ण आनन्द .. यह क्या ख्याल में नहीं आया ? सब प्राणी को वर्तमान में ऐसा ज्ञान ख्याल में आया है। करोड़ों मनुष्यों को ख्याल में आया कि आत्मा सर्वज्ञ है। ऐसा ज्ञान में सबको ख्याल आया है। ऐसा सबके ख्याल में आया या नहीं ? समझ में आया ? उसमें समाने की बात कहाँ है ? पानी का समाना और घड़े में समाने की बात (कहाँ) है ? कुतर्क करते (हैं)।

वह यहाँ कहते हैं, '**सर्वज्ञं शास्वतं**' शाश्वत नाम अविनाशी मेरा सर्वज्ञपद अन्दर में है। और अपने स्वभाव को ... ध्रुव। दो शब्द अन्दर पड़े हैं न ? शाश्वत और ध्रुव। मेरा सर्वज्ञस्वभाव तीन काल, तीन लोक देखे। मैं अकेला ज्ञान का मेरा स्वभाव। भिन्न आत्मा का भिन्न रहा। ऐसा मैं अविनाशी सर्व का जाननेवाला ज्ञान मेरे में है। दृष्टि पर से हट गयी,

अल्पज्ञ से हट गयी, सर्वज्ञ सत् शाश्वत अनिवासी पद मेरा और ध्रुव, उसमें स्थिर है। सर्वज्ञपद मेरे में स्थिर है। आहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि श्रावक अनुभव करते हैं, उसको श्रावक का आचार कहने में आता है। समझ में आया?

यह षट्कर्म है, वह तो व्यवहार... देव, गुरु और ... आता है न? षट् कर्म। वह राग है। आता है जरूर, निश्चय से श्रावक का परमार्थ आचार वह नहीं। व्यवहार है, पुण्यबन्ध का कारण है। षट्कर्म आते हैं या नहीं? देवपूजा, गुरुसेवा, संयम, इन्द्रिय दमन, तप, दान। उसका विकल्प आता है। यहाँ तारणस्वामी ने उसको यथार्थ आचार में नहीं लिया है। उसको विकल्पात्मक व्यवहार आचार है सही। वह जाननेलायक है, अनुभवने लायक वह नहीं है। आता है, जब तक वीतराग नहीं हो तो श्रावक को भी विकल्परूप राग, भक्ति, इन्द्रिय दमन, इन्द्रिय निरोध आदि भाव होता है। स्वाध्याय करने का भाव होता है, परन्तु है वह शुभराग, है शुभ विकल्प। पुण्यबन्ध का कारण है; मोक्ष का कारण नहीं है। फिर भी आये बिना रहता नहीं। आने पर भी यथार्थ आचार तो उसको कहते हैं, अहो! विकल्प भी मैं नहीं, अल्पज्ञपना है वर्तमान विकासरूप, उतना भी मैं नहीं, अल्पदर्शीपना उतना भी मैं नहीं, अल्प वीर्यपना पर्याय में है, उतना नहीं। मैं तो सर्वज्ञ, उसके साथ सर्व वीर्य, उसके साथ पूर्ण आनन्द, उसके साथ पूर्ण दृष्टा, ऐसी शक्तिवान शाश्वत मेरा पद है। और वह ध्रुव अर्थात् स्थिर है। स्थिर है। वैसा का वैसा। समझ में आया? उसको जानना, उसका अनुभव करना।

अपनी देह के मध्य में है। देखो! '**देह मध्येषु**' आया न? '**सो अहं देह मध्येषु**' वह व्यवहार कहा है। मैं तो मेरे में हूँ। परन्तु यह क्षेत्र क्या है, यह बताने को '**देह मध्येषु**' कहा है। देह मध्य अर्थात् देह मध्य में आकाश बताना है न, यहाँ मैं हूँ, दूसरे में नहीं। उसको जानते हैं, वह श्रावक का आचार कहने में आता है। व्यवहार के पक्षकार को यह बात एकान्त लगती है। समझ में आया? अकेला व्यवहार का पक्ष करे, यह व्यवहार का आचार, यह व्यवहार का आचार। उसको यह बात एकान्त लगती है। एकान्त नहीं है। उसकी बात हो, सविकल्प का व्यवहार हो तो व्यवहार जाननेलायक उत्पन्न होता है। ऐसी बात बिना अकेला व्यवहार एकान्त व्यवहार मिथ्यादृष्टि का है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि का व्यवहार।

सम्यग्दृष्टि का व्यवहार, वह विकल्प हो, परन्तु वह बन्ध का कारण ज्ञानी जानते हैं, धर्म नहीं। धर्म का कारण वह विकल्प नहीं है। डालचनदजी! क्या करना? लोग (कहते हैं), व्यवहार का निषेध करते हैं, व्यवहार का लोप हो जाएगा, व्यवहार लोप हो जाएगा। सोनगढ़ की पद्धति स्वीकारते हैं तो व्यवहार का लोप हो जाएगा। कहते हैं या नहीं? यह स्वीकार करने से व्यवहार का लोप हो जाएगा। तारणस्वामी कहते हैं कि हम तो ऐसा श्रावकाचार कहते हैं। विकल्प को हम श्रावकाचार परमार्थ नहीं कहते। सुन तो सही। शुभराग व्यवहार होने पर भी व्यवहार आचरण है। वह वास्तव में परमार्थ आचरण, स्वभाव का आचरण नहीं।

स्वभाव का निर्विकल्प आचरण अपना स्वभाव शुद्ध ज्ञायक सर्वज्ञ शाश्वत स्थिर ध्रुव है, ऐसा अनुभव करना, प्रतीत करना, स्थिर होना, पर्याय में ... उसका नाम श्रावकाचार पर्याय में प्रगट हुआ है। श्रावकाचार पर्याय है। श्रावकाचार कोई द्रव्य-गुण नहीं है। समझ में आया? क्या है? श्रावकाचार पर्याय है। कैसी पर्याय को श्रावकाचार कहते हैं? ऐसा मैं शाश्वत सर्वज्ञ ध्रुव ... हूँ, ऐसा दृष्टि, ज्ञान और एकाग्रता हुई, उसको श्रावक का आचार कहते हैं। .... डालचन्दजी! ... नयी नहीं है। समझ में आया? ४५।

**दर्शन ज्ञान संयुक्तं, चरणं वीर्य अनंतं।**
**अमूर्त ज्ञान संशुद्धं, देहे देवलि तिष्ठते॥४५॥**

देखो! अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान सहित, अनन्त वीर्य और अनन्त वीतरागचारित्र सहित। '**चरणं**' है न? '**चरणं वीर्य अनंतं**' अनन्त का अर्थ है वीतरागचारित्र अन्दर आत्मा में पड़ा है। समझ में आया? मेरे आत्मा में बेहद अपरिमित, अनन्त दर्शन-दृष्टापना पड़ा है और अनन्त बेहद अचिन्त्य अपरिमित ज्ञानस्वभाव मेरे में पड़ा है। पर्याय ऐसा स्वीकार करती है। पर्याय को यहाँ श्रावकपना कहा है। पर्याय स्वीकार करती है त्रिकाल को। मैं अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, चरण अनन्त, दोनों को अनन्त कहा है न? चरण, वीर्य को अनन्त कहा है न? उसका अर्थ कि वीर्य अनन्त (है)। मेरे में बल-सामर्थ्य अपने शुद्ध स्वभाव की रचना करनेवाला मेरे में अनन्त वीर्य है। शुद्ध स्वभाव। पुण्य-पाप विकल्प की रचने-करनेवाला नहीं। समझ में आया? मेरा वीर्य कोई शरीर की क्रिया रचे, हिलावे,

करे—ऐसा है ही नहीं अपना वीर्य। समझ में आया? अपना वीर्य अनन्त, अपने अनन्त शुद्ध गुण की रचना पर्याय में करे ऐसा अनन्त वीर्य मेरे में पड़ा है।—बस।

और अनन्त चरणं। चारित्र अन्दर में वीतराग पर्याय। वीतरागी शक्ति का स्वरूप अस्तित्व मैं। मेरे अन्तर में वीतरागी चारित्र (पड़ा है)। स्वरूप चरणं पूर्णानन्द का आचरण, ऐसी पर्याय में; द्रव्य में, शक्ति में-गुण में पूर्ण चारित्र पड़ा है। अनन्त चारित्र पड़ा है। ऐसा अमूर्त। मैं अमूर्त हूँ। '**ज्ञान संशुद्धं**' और ज्ञानाकार परम शुद्ध देह। देखो! '**अमूर्त ज्ञान संशुद्धं**' ज्ञान निर्मलानन्द।

'**देहे देवलि तिष्ठते**' इस देहरूपी देव के मन्दिर में, इस देहरूपी मन्दिर में मैं तिष्ठता हूँ। समझ में आया? देहरूपी मन्दिर में विराजमान है। ऐसा अनुभव करते हैं। श्रद्धा करके ज्ञान करते हैं। अन्तर में पूर्ण आनन्द, ज्ञान, चतुष्टय आदि अनन्त पड़ा है, वह तो द्रव्यस्वभाव है, गुणस्वभाव है। उसकी पर्याय में आचरण अन्दर ... करते हैं, उस आचरण को श्रावकाचार मोक्ष का मार्ग की पर्याय उसको कहने में आती है। पहले तो अभी समझने का ठिकाना नहीं। उसे अन्दर में चीज़ क्या है... गड़बड़-गड़बड़ (करते हैं)। सबके साथ समन्वय करो। समन्वय समझते हो? मिलान। एब एक... हमारा भी है, ईश्वर है, हमारे परमेश्वर भी ऐसा कहते हैं, तुम भी ऐसा कहते हो। बात में अन्तर नहीं है। .. है। सर्वज्ञ के सिवाय.. समझ में आया? पर के साथ थोड़ा भी मिलान करना,.. पण्डितजी!

तारणस्वामी कहते हैं, खबर है? जनरंजन। जनरंजन के लिये ... स्त्री-पुत्र खुश होंगे। आहाहा! बड़ी बात, भाई! मूढ़ है। निगोद में जाएगा। किसकी प्रभावना? अधर्म की? प्रभावना अपनी पर्याय में होती है या बाहर होती है? प्र-भावना। प्र-विशेष भावना। अपने शुद्ध ध्रुव स्वभाव की एकाग्रता, वह प्रभावना है। समझ में आया? दूसरे को रंजन करने को.. सबको ऐसा लगे, साधारण समाज... ओहोहो! क्या बात करते हैं! जनरंजन, जिनरंजन नहीं। जिनउक्तं नहीं, जनउक्तं, ऐसा शब्द भी अन्दर आता है। जिनयुक्त नहीं, जनयुक्त। आता है न? भजन में आता है। ... आता है या नहीं? ममल पाहुड़ में आता है। सब देख लिया, एक महीने में पूरा-पूरा देख लिया। ... मिलान नहीं होता, बहुत विरुद्ध है। ... तारणस्वामी के नाम का बनाया है। उसके साथ मिलान नहीं होता। .. समझ में आया?

अभी एक महीने में सब बारह देख लिये।... बनाया ... थोड़ा-थोड़ा बारह में से ले लिया है। कोई सार-सार गाथा हो न। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

जनगण बावला। अरे..! जनसमूह तो मूर्ख है। बावला है। आता है या नहीं भजन? ... समझ में आया? ज्ञान तो ज्ञान मेरा है। ओहो! राग की क्रिया से मेरा सम्बन्ध नहीं। देह की क्रिया से तो सम्बन्ध ही क्या है? दो आत्मा एक, उसका तीन काल में मिलान है नहीं। ऐसा ज्ञानी अन्तर ज्ञानस्वभाव.. कहा न? '**ज्ञान संसुद्धं**' है? मेरा ज्ञानाकार परम शुद्ध स्वभाव। वीतराग मेरा त्रिकाल स्वभाव। अभी पर्याय में भले वीतराग न हो, पर्याय में वीतराग हो तो केवलज्ञान हो जाए। समझ में आया? परन्तु द्रव्य-गुण में वीतराग चारित्र भरा है। समस्वभावी चारित्र, समस्वभावी चारित्र। यथाख्यात शुद्ध चारित्र अन्दर। साक्षात् अन्दर पड़ा है। ध्रुव स्थिर। ऐसा आत्मा मैं देहरूपी देवल में विराजमान हूँ। कहो, समझ में आया? वह तो व्यवहार भगवान है। भगवान वहाँ नहीं, भगवान यहाँ है। समझ में आया? '**देहे देवलि तिष्ठते**' ४९। कोई-कोई गाथा भिन्न-भिन्न लिखी है। .... ४९।

**विज्ञानं जो विजानन्ते, अप्पा पर परिक्षया।**
**परिचये अप्प सद्भाव, अन्तर आत्मा परिक्षयेत्॥४९॥**

देखो! यह शब्द। जो कोई आत्मा और पर। है न? देखो! '**अप्पा पर**' दो शब्द पड़े हैं, दूसरे पद में। '**अप्पा पर**' दो सिद्ध किया। एक ही आत्मा है और अकेला पर ही है, ऐसा नहीं। दो ही है, अनादि दोनों ही है। '**अप्पा**' अपना आत्मा। और '**पर**' अनन्त आत्मा। '**पर**' अनन्त परमाणु, '**पर**' अनन्त निगोद के जीव, छह द्रव्य। मेरे से छह द्रव्य अन्य-पर-भिन्न हैं।

'**अप्पा पर परिक्षया**' आत्मा और पर की परीक्षा करके। देखो! परीक्षा करके। ऐसे ही मूढ़पने जान ले, माने ऐसा नहीं। कसौटी (पत्थर पर) सुवर्ण की परीक्षा करता है या नहीं? सोलह वाल है, पन्द्रह बाल है, ऐसा कहते हैं या नहीं? हमारे में सोलह वाल कहते हैं। पूर्ण होता है न? सौ टंच का सोना। पन्द्रह वाल है, भैया! एक अंश उसमें ... का मिला हुआ है। अकेला सोलह वाल। ऐसे अपना आत्मा और पर की परीक्षा करनी चाहिए। परीक्षा किये बिना मानना वह मूढ़ दृष्टि है। है? पण्डितजी! परीक्षा करना। भगवान जाने कौन.. भगवान ने परीक्षा की।

**मुमुक्षु :** भगवान कहे वह सत्य।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु सत्य तुझे निश्चित हुए बिना, परीक्षा किये बिना भगवान कहे वह सत्य, कहाँ से आया? परीक्षा कर। समझ में आया? मेरा आत्मा प्रत्यक्ष मेरे शरीर प्रमाण भिन्न है। देह में तिष्ठते आया है। शरीर प्रमाण मेरा आकार है। देह मध्ये कहा है न सबमें? शरीर प्रमाण मेरा आकार है। मेरा आकार कोई सर्व व्यापक (नहीं है)। सर्व में चला गया नहीं। क्यों? कि जब मैं अन्दर में एकाग्र होता हूँ तो इतने क्षेत्र में एकाग्र होता हूँ। एकाग्र होने में बाहर जाना पड़ता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? पण्डितजी! देह मध्ये कहा है न? तो मेरा आकार उतना नहीं है, आकार असंख्य प्रदेश का। इतने में एकाग्र होता हूँ तो मेरा पता लगता है। ऐसे (बाहर में) एकाग्र होऊँ तो पता लगता है, ऐसा नहीं। क्योंकि मैं बाहर में नहीं हूँ। समझ में आया? मैं इतने में हूँ। देह मध्य में बिल्कुल असंख्य प्रदेश आकार (है)। भले असंख्य प्रदेश खबर नहीं हो, लेकिन इतने आकार में अपने अवगाहन में मेरा अनन्त गुण का पिण्ड इतने में है। दूसरे के साथ मिलाऊँ और दूसरे में व्यापक हो और दृष्टि ऐसे करे तो ... सब मिल जाओ, भैया! प्रकाश में प्रकाश है। .... स्थानकवासी है न? गये थे। जैन की श्रद्धा नहीं थी। बस, अनन्त में मिल गया। आत्मा प्रकाश हुआ, वह प्रकाश दूसरा अनन्त प्रकाश है तो मिल गया अन्दर में। ऐसा नहीं है। झूठ-मूठ की कल्पना अज्ञानी की है। समझ में आया?

अपना देह। अपनी पर्याय अपने में एकाग्र इतने क्षेत्र में ही होती है। उसी क्षेत्र में अनन्त गुण पड़े हैं। कोई गुण बाहर में है नहीं। क्षेत्र का निश्चित होना, द्रव्य का निश्चित होना, गुण का निश्चित होना, प्रगट पर्याय का होना। ... परीक्षा करके करना चाहिए। मगनभाई! समझ में आया? '**विज्ञानं जो विजानन्ते**' जो कोई दोनों के विशेष ज्ञान को भेदविज्ञान को विशेष सूक्ष्मता से जानते हैं,.. देखो! शब्द पड़ा है न? '**विज्ञानं जो विजानन्ते**'। '**अप्पा पर**' अपना ज्ञान अतीन्द्रिय सूक्ष्म। जैसा द्रव्य है, जैसा गुण है, जैसी पर्याय है। और विकार भी कैसे उत्पन्न हो और भिन्नता अन्दर में कैसी है, ऐसी '**अप्पा**'-अपनी परीक्षा करना, पर की परीक्षा करना। विकल्प की, कर्म की, शरीर की, दूसरे सिद्धों की, सिद्ध क्या है, अरिहन्त क्या है, परमेष्ठी क्या है, दूसरा निगोद का आत्मा कैसा, कहाँ है अनन्त और परमाणु, अनन्त पुद्गलों में परमाणु क्या, उसका गुण क्या, उसकी पर्याय स्वतन्त्र क्या,

'**अप्पा पर**' की परीक्षा करके, दोनों के विशेष ज्ञान को। विज्ञान है न? विज्ञान। अर्थात् विशेष ज्ञानकर। भेदविज्ञान को '**अप्पा पर**' की परीक्षा करके भेदविज्ञान को। ऐसा शब्द पड़ा है। भेदविज्ञान एक में नहीं होता। भेदविज्ञान कहता है, अनन्त परपदार्थ में मेरा अकेला मेरा भिन्न आत्मा (है)। समझ में आया?

शास्त्र में आता है न? '**उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं**' अनुभव होने में नय उदय नहीं होते। निक्षेप नहीं होता है, और प्रमाण नहीं होता। बस, वेदान्त कहे, हमारा अद्वैत आ गया। कहाँ आया? सुन तो सही। समयसार की १३ वीं गाथा है, उसमें आता है। '**उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं**' देखो! नय भी विलय हो जाता है, निक्षेप भी विलय हो जाता है, प्रमाण भी विलय हो जाता है। समयसार में श्लोक है। फिर क्या रहा? अकेला अद्वैत रहा। परन्तु अद्वैत कौन? मेरा आत्मा अद्वैत। समझ में आया? नय, निक्षेप का विकल्प से ज्ञान किया था, ... अन्तर्दृष्टि करने से विकल्प (चले गये)। वस्तु दूसरी चली जाती है और पर से मैं भिन्न हूँ, उसमें मिल जाता है, पर के साथ, ऐसा कभी होता नहीं। समझ में आया?

'**अप्पा पर परिक्षया**' '**विज्ञानं जो विजानन्ते**'। '**विजानन्ते**' शब्द तो यह है, '**विज्ञानं जो विजानन्ते**' विशेषपने सूक्ष्म बुद्धि से जानता है। सूक्ष्म बुद्धि से, सूक्ष्म तर्क से, सूक्ष्म न्याय से। यह कभी पढ़ा है?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... पैसे की धूल की? दलाल है। यह पूँजी क्या है? ... '**अप्पा पर**' दो आया या नहीं? यह श्रावक को कहते हैं कि कोई मुनि को कहते हैं? श्रावकाचार। '**अप्पा पर परिक्षया**' अपनी और पर की परीक्षा करके विशेष जानकर, सूक्ष्म विशेष जानना, सूक्ष्मता से जानना। '**विजानन्ते**' शब्द पड़ा है न? सूक्ष्मपने जानना। स्थूलपने नहीं। सूक्ष्मपने सूक्ष्म बुद्धि। वीतराग मार्ग सूक्ष्म बुद्धि का है। श्रीमद् कहते हैं न? सूक्ष्म बुद्धि से वीतराग का धर्म प्राप्त होता है। सूक्ष्म बोध का अभिलाषी, ऐसा आता है न? सदैव सूक्ष्म बोध का अभिलाषी। वीतराग मार्ग को प्राप्त करने का पात्र है। सदैव सूक्ष्म बोध का अभिलाषी। आहाहा! श्रीमद् कहते हैं। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा वीर जिनेश्वर के मार्ग का पात्र जीव कैसा होता है? सदैव सूक्ष्म बोध का अभिलाषी।

अहो! चैतन्य अतीन्द्रिय कैसा है? राग कैसा है? पर कैसा है? सबको परीक्षा करके... समझ में आया? विशेष सूक्ष्मता से तथा '**अप्प सद्भाव**' आत्मा की सत्ता और उसके स्वभाव का। देखो! शब्द लेते हैं। '**परिक्षये**' शब्द पड़ा है। तीन शब्द पड़े हैं उसमें। परिच्छया दो शब्द और परिच्छये तीसरा शब्द। कहते हैं, अपना आत्मा शुद्ध परमानन्द की मूर्ति कैसी है, यह सूक्ष्म बोध से समझना और पर का विकल्प, राग, देह, वाणी सबका अस्तित्व है। उसको सूक्ष्म बोध से समझना। समझकर भेदकर '**परिचये अप्प सद्भाव**' फिर पर का परिचय नहीं करना है, जानने में है। समझ में आया? परिचय अपना करना है। '**परिच्छये अप्प सद्भाव**' आत्मा का सत्तारूप शुद्ध स्वभाव अनन्त गुण का पुंज प्रभु एक, उसका परिचय करना। उसका परिचय कहो, संग कहो, अनुभव कहो, एकाग्रता कहो, शान्तरस के वेदन में एकाकार हो जाना कहो। यह आत्मा का सद्भाव का परिचय है। संग किया, संग। अनादि से असंग पदार्थ का संग छोड़कर, पुण्य-पाप के संग में, निमित्त के संग में रुका था। समझ में आया?

आत्मा के सत्ता और सुखस्वभाव का परिचय चाहता है। देखो! परिचय।... आत्मा का परिचय। पण्डितजी! तारणस्वामी ने कैसा शब्द (रखा है)। एक गाथा में तीन बोल रखे हैं। पहला '**अप्पा पर परिक्षया**' (दूसरा) '**परिच्छये अप्प सद्भाव**'। समझ में आया? तब '**अंतर आत्मा परिक्षयेत्**'। वही अन्तरात्मा है। ऐसा परिच्छये अर्थात् पहिचानना चाहिए। अन्तरात्मा की पहिचान है। अन्तरात्मा कहो, श्रावकाचार कहो, समकित कहो, निश्चय सम्यग्ज्ञान कहो। समझ में आया? '**परिच्छये अप्प सद्भाव**'। अपना और पर का सूक्ष्म बोध का भेद होने से, पर से हटकर... ज्ञान किया, परन्तु पर से हटकर अपना पूर्ण ज्ञायकभाव, उसका परिचय पाता है अथवा उसका पता पाता है कि क्या चीज़ है। अन्तर में एकाग्र होता है कि यह आत्मा शुद्ध है। पूर्ण आनन्दघन है, ऐसा ज्ञानी अन्तरात्मा चौथे गुणस्थानवाला या पंचम गुणस्थानवाला परिचय पाता है। वही अन्तरात्मा है। देखो! अन्तरात्मा। यहाँ तो अभी चौथे, पाँचवें गुणस्थान की बात करते हैं श्रावकाचार में।

पुण्य-पाप, शुभाशुभ भाव की एकाग्रता परिचय पाता है, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। बहिरात्मा है। जो अन्दर में नहीं है, उसका परिचय पाया। अन्दर में तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द है। विकल्प उठते हैं, दया, दान का विकल्प आदि शुभभाव, उसका परिचय

पाकर एकाग्र है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि मूढ है। समझ में आया? और अन्तर स्वभाव का परिचय पाता है, वह अन्तरात्मा '**परिचये**' कहते हैं कि परीक्षा करके जानना कि ऐसा अन्तरात्मा होता है। ऐसे अन्तरात्मा की परीक्षा करना। देखो! परीक्षा करना, परीक्षा करना ऐसा लेते हैं। समझे बिना जानने में आता नहीं। भगवान कहते हैं, ... होगा। तारणस्वामी कहते हैं, क्या कहते हैं यह तो तुझे खबर नहीं, कहाँ से आया तेरे पास..? समझ में आया?

कहते हैं कि परिचय तेरा स्वभाव और पर का भेद करके, तेरे में संग करना भगवान का। पर का संग छोड़ देना। विकल्प का भी संग छोड़ देना। स्व का परिचय करना। ऐसा अनुभव होना, उसका नाम श्रावक आचार कहने में आता है। आहाहा! बड़ी बात, भाई! समझ में आया? ४९ (गाथा) हुई। अब ६०। ...

**अदेवं देव उक्तं च, अंधं अंधेन दृस्यते।**
**मार्गे किं प्रवेसं च, अंध कूपं पतंति ये॥६०॥**

परीक्षा नहीं, भान नहीं, स्व-पर की खबर नहीं। समझे? '**अदेवं देव उक्तं**' अदेव को देव मानते हैं। सर्वज्ञपद के देव क्या है? अनन्त आनन्द पद क्या है? पूर्णानन्द वीर्य क्या है? खबर नहीं। और साधारण जन कोई ब्रह्मा, विष्णु, फलाना, ढिकना बात करनेवाला निकले कि ये एक देव है। समझ में आया? '**अदेवं देव उक्तं च**' ... ऐसा माने। समझे?...

'**अंध अंधेन दृस्यते**' अन्धे को अन्धे द्वारा मार्ग दिखाया जावे। सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा, परमात्मा, पर, स्व, अनन्त द्रव्य, गुण, पर्याय क्या, खबर नहीं। अन्धा कथन करता है, अन्ध कथन करे और अन्धा उसको माने। कड़क भाषा है। करुणा की भाषा है। क्या? करुणा (है)। प्रभु! तुमको दिखानेवाला अन्धा और तू सुननेवाला अन्धा, कहाँ जाएगा तू? गड्ढे में जाएगा। कूप में जाएगा, ऐसा यहाँ कहते हैं। तुझे खबर नहीं,... देखो! '**अंधं अंधेन दृष्टाते। मार्ग किं प्रवेसं च**' मार्ग दिखाया जावे, किस तरह मार्ग में प्रवेश हो सकेगा? अन्धा मार्ग बतावे कि ऐसे जाना, ऐसे जाना। कैसे माने क्या? ऐसे जाओ, ऐसे जाओ। परन्तु कहाँ? अन्धे को सब ऐसा-ऐसा है। ऐसे दिखानेवाला अन्धा। ऐसा करो, ऐसा करो। प्राणायाम करो, ऐसा करो। कहनेवाला अन्धा। अरे..! वह तो राग की क्रिया है। ऐसा करो,

प्राणायाम करना, फिर ऐसा करना, फिर आसन लगा देना। वह तो जड़ की पर्याय है, क्या लगाये ? समझ में आया ? और ऐसी दया पालो, ऐसी भक्ति करो, ऐसे उपवास करो, ऐसा यह करो, यह करते-करते तुम्हारा कल्याण हो जाएगा।... '**अदेवं देव उक्तं**' देव की वाणी और देव को मानते नहीं, समझते नहीं। '**अंध अंधेन दृष्टते। अंध कूपं पतति ये।**' अन्धे कूप में। देखो ! अकेला कूप नहीं लिया है। अन्ध कूप में। कुएँ में अन्धेरा है न।... कुँआ भी अन्धा लिया है।... चौरासी में गिरेगा, अन्धा है, तेरा पता नहीं खायेगा।

सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिसने छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ तत्त्व आदि, पर आदि और स्व तेरा पूर्ण स्वरूप, उसकी परीक्षा करके अन्तर्दृष्टि, अनुभव नहीं किया और अज्ञानी ने कहा ऐसे मार्ग पर चला। दोनों अंधे कूप में '**पतंति**'। अन्धे कूप में गिरता है। श्रावकाचार से विरुद्ध की बात की। पहले श्रावकाचार कहा, यह श्रावकाचार से विरुद्ध बात है। जिसको सच्चा श्रावकाचार नहीं है, वह विपरीत मार्ग पर चलकर अन्ध कूप में गिरेगा।... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

(३)

आसोज शुक्ल ९, गुरुवार, १५-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-११५, १३२, १३३, १३४, १४२, १६८, १६९, प्रवचन - २०

..... श्रावकाचार का वर्णन क्या है? श्रावक को मद्य.. मद्य-शराब नहीं होना चाहिये। शराब। दारू को शराब कहते हैं न? शराब का पीना। यहाँ तो अध्यात्म में शराब उतारा है। बनारसीदास में सब आता है। देखो! ११५ गाथा।

**जिन उक्तं न श्रद्धते, मिथ्या रागादि भावनं।**
**अनृतं ऋृत जानाति, ममत्वं मान भूतयं॥११५॥**

है ११५? जिनेन्द्र के कहे हुए उपदेश का श्रद्धान नहीं करता। पहला शब्द यह है। जिनेन्द्र '**उक्तं**'। सर्वज्ञ वीतराग एक समय में जिनको वीतरागता और विज्ञानघनता, तीन काल—तीन लोक का ज्ञान जिनको हुआ है, ऐसे वीतराग हैं। और उनको केवलज्ञान—तीन काल तीन लोक जानते हैं, ऐसा ज्ञान भी है। ऐसा आस्थापूर्वक कहते हैं। '**जिन उक्तं**' परमेश्वर वीतरागदेव ने '**उक्तं**' अर्थात् कहा। छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ तत्त्व, '**उक्त न श्रद्धते**। ऐसे आत्मा को, छह द्रव्य को नहीं मानते हैं।

'**मिथ्या रागादि भावनं**'। झूठे राग की भावना द्वारा। मिथ्या राग-द्वेष की भावना सदा किया करते हैं। विपरीत पर्याय, राग-द्वेष-मोह की पर्याय में लीन होते हैं और अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य, सर्वज्ञ ने जैसा कहा, ऐसा नहीं मानते हैं, वह मदिरा पीनेवाला जैसा कहने में आया है। कहो, डालचन्दजी!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पागलपने में पागल हुआ है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वीतराग की परीक्षा करना, वह तो सबको कहते हैं। इसलिए पहला शब्द लिया है। '**जिन उक्तं**' शब्द लिया है। अपने घर की बात नहीं करते हैं। '**जिन उक्तं**' है न? पण्डितजी! जिन कौन हैं, अजैन कौन है, अन्य क्या कहते हैं, जैन क्या कहते हैं, उसका दो का टोटाल करके, तुलना करके ही निर्णय करना चाहिए। समझ में आया? सेठी! यहाँ तो सब ... कहते हैं, हमारे भगवान कहते हैं, वह सत्य, हमारे भगवान ने कहा वह सत्य। नहीं करना चाहिए? जिन कौन है, जिन ने कैसा.. वह पहले कहा, जिनको वीतरागता पूर्ण हो गयी है और जिनको केवलज्ञानघन एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानने की पर्याय प्रगट हो गयी है, ऐसे परमेश्वर को अरिहन्त कहने में आया है। यहाँ '**उक्तं**' शब्द प्रयोग किया है, इसलिए सिद्ध नहीं है। जिनको सर्वज्ञपद और वीतरागपद प्राप्त हुआ, उन्होंने कहा हुआ। ऐसा शब्द है न। '**उक्तं**'। तो सिद्ध तो कह सकते नहीं। समझ में आया? सिद्ध को तो भाषा है नहीं।

वह कहा कि, '**जिन उक्तं**'। अर्थात् अरिहन्त पद में जो वाणी निकली है। पूर्णानन्द प्राप्त और वीतराग होने पर भी वाणी आती है, इतना भी सिद्ध किया। पूर्ण हो और उसके बाद वाणी होती ही नहीं, ऐसी बात है नहीं। और वाणी, वाणी के कारण से निकलती है। उसको व्यवहार से '**जिन उक्तं**' वीतराग ने कहा हुआ, ऐसा कहने में आया है। कहो, समझ में आया? डालचन्दजी! वीतराग तो कहे कि हमारा पूर्ण मार्ग है, दूसरा कहता है कि हमारे में पूर्ण है। तो तुलना करनी चाहिए या नहीं? परीक्षा करनी चाहिए। '**जिन उक्तं**'। सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा का स्वभाव... आगे अभी कहेंगे, पूर्ण सर्वज्ञस्वभाव ही आत्मा का है। कल आया था। सर्वज्ञ आत्मा का त्रिकाल स्वभाव है। उसका जिसको भान होकर अनुभव होकर केवलज्ञान प्रगट हुआ और वह वाणी जो निकली, उसको '**जिन उक्तं**' कहने में आता है। तो उसका अर्थ—जिनागम। वीतराग ने कही वाणी को जिनागम कहने में आता है। जिनागम के सिवाय सत्य बात तीन काल में दूसरे में कहीं नहीं है। पहले तो जैन को ही नहीं माने, समझ में आया? उसकी मान्यता तो बिल्कुल विपरीत, अज्ञानी पागल है। पागल है, पागल। पागल कहते हैं न?

'**मिथ्या रागादि भावनं**'। देखो! सूक्ष्म बात की है। अपना स्वभाव सर्वज्ञ ने कहा,

ऐसा नहीं मानकर, मिथ्या श्रद्धा में अल्प सदा अल्पज्ञ हूँ, मैं परमेश्वर का भक्त ही रहने के लायक हूँ, परमेश्वर कोई दूसरा कर्ता है, उसका मैं सदा दास रहूँगा। मोक्ष में भी भगवान का भक्त ही बना रहता है—ऐसी जिसकी भावना है, वह मिथ्याश्रद्धा और मिथ्या राग की भावना करता है। समझ में आया? क्यों सेठ नहीं आये? टाईमसर आना चाहिए।

'**अनृतं ऋृत जानाति**'। ... सच मानते हैं। देखो! है न? '**अनृतं**' अर्थात् झूठ कल्पित को '**नृत**' अर्थात् सच्चा। झूठा को सच्चा माने और सच्चे को झूठा माने। तो झूठा-सच्चा क्या है, उसकी उसने परीक्षा करनी चाहिए। कल आया था न? '**परिच्छये**'। परीक्षा किये बिना माने कि हमारा मार्ग ठीक कहता है, भगवान ठीक कहते हैं, ऐसा नहीं। समाज में जन्म हुआ फिर भी क्या कहते हैं और उसका सत्य क्या है, ऐसी परीक्षा बिना माने तो झूठ है, कल्पित है, उसे सच्चा जान लेता है। कहो, समझ में आया?

श्रावक उसको कहते हैं कि जिसको, '**जिन उक्तं**'—वीतराग परमात्मा ने कही वाणी-आगम, उस आगम में कहे पदार्थ—छह द्रव्य, नौ तत्त्व, पंचास्तिकाय अनादि-अनन्त पदार्थ हैं, ऐसा जो श्रद्धा में लेता है और आत्मा ज्ञायकस्वरूप अखण्डानन्द पूर्ण है, ऐसा श्रद्धा में लेता है, उसे श्रावक का आचार कहने में आता है। यहाँ अनाचार की बात की है। श्रावक मद्य नहीं पीता। मद्य-दारू। दारू का अर्थ अज्ञानी का कहा हुआ माने तो दारू पिया है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मूढ़ है, उसने भी दारू पिया है। ज्ञानी का नहीं माने और अज्ञानी का भी नहीं माने तो वह तो मूढ़ हुआ। किसी का नहीं मानना, (वह तो) स्वच्छन्द हुआ। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मानता है।

झूठ—'**अनृतं**' को सच्चा जान लेता है। ममता और अभिमान का भूत उस पर चढ़ा रहता है। भूत लगा है, सिर पर भूत (चढ़ा है)। हम समझे वह बराबर है, हमने समझा वह बराबर है। भगवान क्या कहते हैं, भगवान की वाणी क्या कहती है, उसकी साथ तो मिलान

करता नहीं। उसको यहाँ ममता का, मान का भूत (सिर) पर सवार हो गया है, वह दारू पीनेवाले जैसा पागल है। परीक्षा करनी चाहिए। श्रावक-श्रावक ऐसे नहीं होता, जैन में आ गया तो। समाजभूषण नाम दे दिया है तुमको।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सिर पर बड़ी जिम्मेदारी आयी है। समझ में आया ? देखो !

तारणस्वामी ११५वीं गाथा में, शराब पीनेवाला जैसे मद्य में पागल हो जाता है, ऐसा जिनोक्त कहे प्रमाण से विरुद्ध मानता है, अन्य का कल्पित पदार्थ अज्ञानियों ने (कहा हुआ कि) एक आत्मा ही है, जड़ ही है, अथवा सब द्रव्य एक होकर रहते हैं, ऐसा कल्पित तत्त्व कहे, उसको माने तो पागल जैसा, दारू पीनेवाले जैसा उसको माननेवाला कहते हैं। कहो, समझ में आया ? ११५ हुई। ११५ हुई न ? १३२। थोड़ी खास-खास गाथा सारा देखकर लिख लिया है। १३२। चोरी। चोरी-चोरी किसको कहते हैं ? पण्डितजी ! चोरी किसको कहते हैं ?

**स्तेयं दुष्ट प्रोक्तं च, जिन वचनं विलोपितं।**
**अर्थ अनर्थ उत्पादी, स्तेय व्रत खंडनं॥१३२॥**

दु:खकारी, अहितकारी वचनों का कहना। '**दुष्ट प्रोक्तं**' है न ? '**दुष्ट प्रोक्तं**'। वास्तविक तत्त्व से उल्टा कथन करना। भगवान का कथन जो है, परमात्मा ने कहा, गणधरदेव ने आगम में रचा, उससे विरुद्ध कोई कहता है, वह दुष्ट, दु:खकारी वचनों का कहनेवाला सत्य का चोर है। चोर है। त्यागी होकर भी यथार्थ वीतरागमार्ग से विरुद्ध कल्पित अज्ञानी का कथन माने और कहे, वह चोर है। ... कितनी जवाबदारी है ! ऐसे जैनमार्ग में करोड़पति हो या अरबोंपति हो तो उसके मुनीम को दस रुपये का वेतन दे मुनीमपना करे ऐसा हो सकता है ? दस रुपये का वेतन दे, वह कितना काम कर सके ? उसका मुनीम बड़ा होना चाहिए।

ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा जिनागम की श्रद्धा-ज्ञान कहनेवाला महान ज्ञानी, श्रद्धावन्त, वास्तविक विवेक, भान है, सर्वज्ञ का मार्ग है, अज्ञानी का यह है, सबका विवेक हो, वह उसका कथन कर सकता है। दूसरे में विरोध आये बिना रहता नहीं। कहीं भी एक भी विरोध घुस जाए तो पूरे शासन का लोप हो जाए। देखो ! यह कहते हैं।

'**स्तेय दुष्ट प्रोक्तं च, जिन वचन विलोपितं**' देखो! प्रत्येक गाथा में रखा है, जिनवचन, जिनवचन। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर, उन्होंने एक आत्मा को अनन्त गुण का राशि कहा। ऐसे अनन्त आत्मा, उससे अनन्तगुना परमाणु, ऐसी बात जो कही, उसमें एक आत्मा अपना पूर्ण ज्ञायकभाव अनन्त गुण की राशि, उसकी प्रतीत किये बिना, '**जिन वचन विलोपितं**' वीतराग का वचन लोप करता है, नाश करता है। '**अर्थ अनर्थ उत्पादी**'। अर्थ का अनर्थ उत्पन्न करता है। देखो! शास्त्र में क्या कहना है? भगवान को क्या कहना है? अर्थ का अनर्थ करता है।

यशोविजय हुआ है न? श्वेताम्बर में (हुए)। उसने कहा है, 'जाति अंधनो दोष नहीं आकरो,' जाति अन्ध समझते हो? अन्धा। जन्म से अन्धा। वह यहाँ कहते हैं, देखो! 'जाति अंधनो दोष नहीं आकरो, जो जाणे नहि अर्थ'। जन्मअन्ध क्या जाने बेचारा, क्या शब्द है, क्या है? 'जाति अंधनो दोष नहीं आकरो' गुजराती है। 'जे जाणे नहि अर्थ, मिथ्यादृष्टि तेथी आकरो, करे अर्थनो अनर्थ...' है शब्द? अर्थ, अनर्थ। है? शब्द है या नहीं? मिथ्यादृष्टि अन्धा अज्ञानी, वास्तविक वीतरागमार्ग की पहचान बिना, पर का कथन और वीतराग के कथन को मिश्र करता है, उसको खबर नहीं है कि मैं क्या जिनवचन लोपता है, उसको यहाँ चोर कहने में आया है। वीतराग का वह चोर है। सर्वज्ञ परमात्मा के कथन में आया, उससे विरुद्ध कहनेवाले को यहाँ चोर कहने में आया है। पण्डित हो और त्यागी हो और मुनि हो, परन्तु यदि वीतरागमार्ग से विरुद्ध माने तो वह चोर है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विपरीत ही करे। इसलिए यहाँ कहते हैं।

'**जिन वचन विलोपितं। अर्थ अनर्थ उत्पादी**' अर्थ का अनर्थ उत्पन्न करता है। क्या भाव है शास्त्र में, द्रव्य-गुण-पर्याय कैसी चीज़ है, कैसी परिपूर्णता है, कैसी अपूर्णता है, कैसा विकार है, कैसा द्रव्यस्वभाव है, कैसा लोकालोक स्वभाव है, वह खबर नहीं। अपनी कल्पना से शास्त्र का अर्थ का अनर्थ '**उत्पादी**' (उत्पन्न करता है)। है भैया? उसमें अर्थ नहीं है। उसका अर्थ है, देखो! अर्थ का अनर्थ करना भी, '**उत्पादी**' अर्थात् करना, करना भी चोरी है। अर्थ का अनर्थ करना वह भी चोरी है। पण्डितजी! ...में बैठना और

पोल चले, ऐसा नहीं चलेगा। वैसे सर्वज्ञ भगवान की दुकान पर बैठकर उसका मार्ग क्या है यह समझ में आये नहीं (और) कहे कि ऐसा है, वैसा है, ऐसा है। समझ में आया? रागादि, पुण्य आदि से धर्म मनावे, देह की क्रिया आत्मा कर सकता है, ऐसा मनावे, ऐसा माननेवाला भगवान के अर्थ का अनर्थ करता है। चोर है। चोरी करके चौरासी की गति में चला जाएगा।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... नहीं होता। अन्तर दृष्टि में ज्ञायक का आचरण करके, यहाँ व्यवहार की बात नहीं की है। व्यवहार है, ऐसा पहले कहा, ... की बात है। हो। शुभराग आता है ऐसा। समझ में आया? ऊमर का त्याग.. क्या कहते हैं? फल। ... ऐसा विकल्प होता है। और यहाँ क्या कहा? जालगालन आदि क्रिया (होती है)। क्रिया क्रिया के कारण से होती है। ऐसा मैं कर सकता हूँ, पानी छानने की क्रिया मैं कर सकता हूँ, वह जिन-आज्ञा को विलोप करनेवाला है। वह तो पर की क्रिया है। कर सकता नहीं, करे क्या? विकल्प ऐसा आता है। समझ में आया? सब समझना पड़ेगा, हों!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चोरी, आत्मा का स्वभाव वीतराग भगवान जो कहते हैं, उससे विरुद्ध मानते हैं, वह चोर है। चोरी क्या, दूसरे की चीज़ लेना (चोरी है)? अपने स्वभाव में नहीं है, ऐसा विरुद्ध कहनेवाला पर को अपना मानता है, वह चोर है। अपना बनाया, माना, जाना। वह क्रिया मैं कर सकता हूँ, जल गालन फलानी-ढिकनी ... आती है न सब? जड़ की क्रिया है। आत्मा कर सकता नहीं। विकल्प आता है, बस! उतनी मर्यादा है। विकल्प आता है, वह भी धर्म नहीं। पण्डितजी!

**मुमुक्षु :** कठिन पड़ता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कठिन क्यों पड़े? ....

आत्मा है, ... भगवान समझने (वाले को) समझाते हैं या नहीं? या नहीं समझ सकता है, उसे समझाते हैं? तुम नहीं समझ सकोगे, ऐसा कहते हैं? क्या कहते हैं यहाँ? तारणस्वामी क्या कहते हैं? आप समझ सकते हो, ऐसा समझो।

जो कोई अर्थ का अनर्थ करते हैं, '**स्तेय व्रत खंडनं**'। सम्यग्दर्शनसहित व्रत कोई व्रत लिया हो और बाद में व्रत में खण्डन कर दे, वह भी चोर है। कहो, समझ में आया? ... करे, शास्त्र में कुछ कहा हो (और) अपनी स्वच्छन्द कल्पना से परम्परा मार्ग दूसरा चलाये, मार्ग का विरोध हो जाए तो कहते हैं, वह सब ठग, अनन्त गणधरों, अनन्त तीर्थंकरों, जिनवाणी का चोर है। सत्य को समझता नहीं। बड़ी जिम्मेदारी है, ये धर्म मार्ग है। पोपाबाई का राज नहीं है। कहते हैं न? उसमें बहुत अर्थ लिया है। देखो! सब आया।

**सर्वज्ञ मुख वाणी च, शुद्ध तत्त्वं समाचरतु।**
**जिन उक्तं लोपनं कृत्वा, स्तेयं दुर्गति भाजनं॥१३३॥**

यह चोरी। सर्वज्ञ वीतराग अरिहन्त भगवान के मुखारविन्द से प्रगट वाणी। देखो! कोई कल्पना अज्ञानी की नहीं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में त्रिकाल ज्ञान है, ऐसा 'सर्वज्ञ मुख' शब्द लिया है, देखो! अरिहन्त लेना है न? यहाँ अरिहन्त लेना है। सिद्ध तो पूर्ण हो गये, उनको कहाँ वाणी है? सर्वज्ञ के मुख में से वाणी आयी। ओहो! सर्वज्ञ हुए तो भी वाणी है। ऐसा संयोग सम्बन्ध है। सर्वज्ञ पूर्णानन्द हो गया, फिर वाणी कहाँ है। वे तो समा गये। ऐसा नहीं है। सुन तो सही। समा गये। फिर भी सर्वज्ञ वीतराग भगवान के मुखारविन्द। मुखारविन्द-मुखरूपी कमल। उससे जो वाणी निकली, उस वाणी के अनुसार... है न? शुद्ध तत्त्व, शुद्ध आत्मिक तत्त्व का अनुभव करो। '**समाचरंतु**' अर्थात् अनुभव करो। अनन्त पदार्थ सिद्ध करके, छह द्रव्य प्रतीत करके, मेरा आत्मा... देखो! यह श्रावकाचार! ज्ञायक पूर्णानन्द, ज्ञान से ज्ञान का आचरण करो। ज्ञान से ज्ञान का आचरण करो। ज्ञान से ज्ञान का आचरण करके केवलज्ञान होता है। ज्ञान में राग का आचरण और क्रिया का आचरण से केवलज्ञान होता नहीं। समझ में आया? बीच में आता है व्यवहार विकल्प, परन्तु उस आचरण से केवलज्ञान (नहीं होता)। वह राग, विकल्प मुक्ति का मार्ग है, ऐसा वीतराग मार्ग में है नहीं। और माने कि राग से भी मुक्ति होती है, राग की परम्परा से मोक्ष कहते हैं, कोई राग से मोक्ष नहीं कहते। उसमें सच्चा क्या? समझ में आया? व्यवहार करते, करते, करते, दया, दान, भक्ति, ... पालते-पालते मोक्षमार्ग हो जायेगा। महँगा पड़ेगा। ऐसे नहीं होगा। राग से नहीं। दृष्टि में पहले छोड़ना पड़ेगा।

दृष्टि में राग हेय मानकर, स्वभाव ज्ञायक चिदानन्द को उपादेय मानकर, जो भगवान ने कहा, '**शुद्ध तत्त्वं समाचरतु**'। देखो! वाणी का सार कहा। पहले तो '**जिन उक्तं**' सत्य माना। परन्तु सार क्या है? '**शुद्ध तत्त्वं समाचरतु**'। अकेला शुद्ध भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसमें '**शुद्ध तत्त्वं**' स्वभाव त्रिकाली। '**समाचरतु**' वह पर्याय आयी। द्रव्य त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक अखण्ड एक अभेद वस्तु। एक ... समाचरण। उसमें आचरण करना। सम आचरण। उसमें स्थिर होना। श्रद्धा, ज्ञान और लीनता निर्विकारी वीतरागी पर्याय, ये तीनों वीतरागी पर्याय है। वीतरागी पर्याय '**समाचरतु**' यह वीतराग का मार्ग है, यह श्रावकाचार है। डालचन्दजी! मूल मार्ग तो इस तत्त्व को समझे बिना, लाख बाह्य क्रिया करे, दान, भक्ति, पूजा, मन्दिर, वाणी की पूजा सब राग, राग और राग-विकल्प है। उसमें कुछ धर्म है नहीं। समझ में आया?

शुद्ध तत्त्व का अनुभव करो। भगवान की वाणी में तो यह आया है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' आता है या नहीं? छहढाला में आता है। प्रेमचन्दजी! आता है न? लाख बात की बात—सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी में ऐसी दिव्यध्वनि आयी, सौ इन्द्र के बीच में समवसरण में वाणी आयी, उस वाणी में यह आया-शुद्ध तत्त्व का (आचरण करो)। अहो! तेरा पूर्णानन्द अरागी वीतरागी समस्वरूपी चैतन्य, उसका अन्तर आचरण करो। उसमें श्रद्धा-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों आचरण अन्तर निर्विकल्प (करो)। उसका नाम भगवान श्रावकाचार (कहते हैं)। देखो! लोग तो चिल्लाते हैं।

रात को एक विचार ऐसा आया था, भाई! प्रवचनसार में आता है न? श्रावक को निश्चय का अवकाश नहीं है। वह तो अपेक्षा से बात की है। आता है न? वह तो चारित्र-स्थिरता की अपेक्षा से बात है। यहाँ तो श्रावक को ये करनी, ये करनी और ये करनी, ऐसा ही कहते हैं। समझ में आया? पंचम गुणस्थान और चौथे गुणस्थान में। आता है न? भाई! श्रावक को निश्चय का अवकाश नहीं है। शुद्ध उपयोग की लीनता बारम्बार आवे, ऐसा आचरण नहीं है। परन्तु यह वस्तु तो.. वह तो मुनि के योग्य जो आचरण है, वह श्रावक को नहीं हो सकता। पूर्ण शुद्धउपयोग की लीनता, लीनता, लीनता।

सर्वज्ञ मुखवाणी में यह आया है। सब शास्त्र का सार और तात्पर्य यह आया है, ऐसा कहते हैं। शुद्ध तत्त्व समाचरण। भगवान की वाणी में... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य भी पाँचवीं गाथा में कहते हैं, अहो! हमारे गुरु ने हम पर कृपा करके शुद्ध आत्मतत्त्व का उपदेश दिया। बस, यह शब्द है। पाँचवीं गाथा में आया है, समयसार। हमारे गुरु ने हमको शुद्ध आत्मा... उसमें बहुत आ गया। पर्याय में अशुद्धता है, निमित्त, अशुद्धता है, .. है, अशुद्धता अनादि की न हो तो शुद्धता प्रगट करने की होती नहीं। हमारा आत्मा शुद्ध है तो पर्याय में शुद्धता प्रगट करो। प्रगट पर्याय में होता है, शक्तिरूप कायम रहता है, ऐसा हमारे गुरु ने हमको उपदेश दिया। इसलिए हमारा निज वैभव हमको प्रगट हुआ है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, शुद्ध तत्त्व अनुभवो। समाचरंतु का अर्थ सम्यक् आचरंतु। सम्यक्-सम आचरंतु। सम्यक्, जैसा आत्मा का स्वभाव है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान। ऐसे प्रकार की श्रद्धा-ज्ञान का आचरंतु, वह श्रावक का आचार भगवान की वाणी में आया है। कोई कहे कि इसमें तो व्यवहार का लोप हो जाता है। सुन तो सही! व्यवहार बीच में आता है। निश्चय के आचरण के बीच में पूर्ण निश्चय जब तक नहीं हो, तब तक बीच में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय... यद्द सच्चे देव-गुरु, हों! उनका विनय, बहुमान का विकल्प आता है। पंचम गुणस्थान योग्य बाहर व्रत का विकल्प आता है। परन्तु वह राग है। निश्चय मार्ग में व्यवहार आता है, परन्तु व्यवहार मोक्ष का कारण है, ऐसा वीतराग की वाणी में आया नहीं। समझ में आया?

'**जिन उक्तं लोपनं कृत्वा**'। ऐसी वीतराग की जो वाणी, ... पहले '**सर्वज्ञ मुख**' कहा, यहाँ '**जिन उक्तं**' कहा। ऐसा वीतराग परमेश्वर ने आत्मा शुद्धस्वभाव अन्दर है, पर्याय में अशुद्ध है। वह दृष्टि छोड़कर शुद्ध का अनुभव करो, दृष्टि करो, ऐसी जो वाणी है तो ... निमित्त है। छह द्रव्य है, सब है। ऐसा '**जिन उक्तं लोपनं कृत्वा**' उसका लोप करके '**स्तेयं दुर्गति भाजनं**'। दुर्गति का पात्र है। नरक और निगोद में जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है न? भैया! '**स्तेयं दुर्गति भाजनं**' वह दुर्गति में भटकने वाला है, दुर्गति में जानेवाला है। समझ में आया? १३३ हुई।...

**दर्शन ज्ञान चारित्रं, अमूर्तं ज्ञान संजुतं।**
**शुद्धात्मानं तु लोपंते, स्तेयं दुर्गति भाजनं ॥१३४॥**

समझ में आया ? आहा ! जो कोई आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमय अमूर्तिक ज्ञानमय। भगवान अमूर्तिक आत्मा। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श कुछ है नहीं। तब है क्या ? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से भरा पड़ा ऐसा अमूर्तिक ज्ञानमय शुद्ध आत्मा को... '**शुद्धात्मानं तु लोपंते**' '**लोपंति**' का अर्थ जानते नहीं, समझते नहीं और उसके शुद्ध स्वरूप का अनादर करते हैं, वह शुद्ध का लोप करते हैं,—'**लोपंते**'। समझ में आया ? परन्तु उसके सिवाय किसी धर्म को पालते हैं। ऐसे आत्मा को छोड़कर, ऐसा परमात्मा ने कहा है ऐसे आत्मा की दृष्टि, ज्ञान, आचरण छोड़कर दूसरे भाव में लग जाते हैं और उससे मेरा कल्याण होगा, वह मेरा श्रावकाचार है, ऐसा माननेवाला दुर्गति भाजन है। भाषा कठिन पड़ती है। ... कड़क भाषा है। सत्य है। दुर्गति जाएगा।

वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर, सौ इन्द्र से पूजनीक प्रभु की वाणी में क्या आया ? और वे क्या कहते हैं, उसे समझे बिना, तेरे घर की कल्पना से तू श्रावकाचार चलाता है और मानता है कि मैं श्रावक हो गया, दुर्गति भाजनं। दुर्गति में भटक जाएगा। चार गति में दुर्गति वास्तविक दुर्गति निगोद है। समझ में आया ? कोई ठिकाने ये पद्य है न, पद्य, कोई बार ऐसा ... किया, कोई बार नरक में जाएगा, कोई बार निगोद में जाएगा, ... समझ में आया ?

'**शुद्धात्मानं तु लोपंते**' देखो ! शुद्धात्मतत्त्व का लोप करते हैं, ऐसे धर्म को पालते नहीं और उल्टे धर्म को आत्मा का धर्म कहते हैं, वे चोरी के भागी हैं। अपना स्वभाव तो लुटाया। विपरीत श्रद्धा में अपने स्वभाव को लुटाया। वह चोर हुआ। अपनी सम्पदा लुट गई। किसकी चोरी करनी है ? माल गया, वह चोरी हो गयी। विकार का लाभ हुआ। अनन्त काल से अर्थ का अनर्थ करके आगे-पीछे करके कहता है, (वह) शास्त्र को, भगवान के अर्थ को, और अपने शुद्धात्मा का लोप करता है, (वह) '**स्तेयं दुर्गति भाजनं**'। वह दुर्गति में जानेवाला भाजन है। कहो, समझ में आया ? १४२। वह आ गया है। ... हो गया न ? १४२। पण्डितजी ! कैसा अर्थ करना और कैसे समझना, वह चीज़ बहुत बड़ी है।

**विषयं रंजित येन, अनृतानन्द संजुतं।**
**पुण्य उत्साहं उत्पादी, दोष आनंदनं कृते ॥१४२॥**

.... '**दोष आनंदनं कृत**' यह बराबर है। '**दोष आनंदनं कृते**' है, अन्दर में है। यहाँ छपने में भूल हो गयी है। शब्दार्थ में है। ... क्या कहते हैं?

जो '**विषयं रंजित**' पाँच इन्द्रियों के विषयों में राग में रंजित होता है। उसका अर्थ-अरागी भगवान अपने आत्मा के आनन्द की रुचि छोड़कर, आनन्द का उत्साह नहीं है, वहाँ राग का उत्साह पड़ा ही है। आहाहा! समझ में आया? हो जाता है, वह मृषानन्द रौद्रध्यानसहित.. देखो! यहाँ रौद्रध्यान की व्याख्या चलती है। मृषानन्द-झूठा आनन्द। रौद्रध्यानसहित होता है। मिथ्यात्व में आनन्दवान खो जाता है। मिथ्याश्रद्धा पाप का परिणाम, उसमें लीन होता है, वही वास्तव में रौद्रध्यान है। यह रौद्रध्यान की व्याख्या। समझ में आया?

पुण्य उत्साह '**उत्पादी**' पुण्य करने में उत्साह पैदा कर लेता है। यह शब्द बड़ा है। जिसको अपना ज्ञाता-दृष्टा अखण्डानन्द का उत्साह, रुचि, दृष्टि नहीं और पुण्य विकल्प-शुभभाव आया, उस शुभ में सर्वस्व उत्साह कर दिया, रौद्रध्यानी है। खराब ध्यान करनेवाला है। सेठ! ... परन्तु तुमने दरकार की नहीं अभी तक। ओलम्भा देना पड़े या नहीं सेठ को? कुछ खबर नहीं। क्या चीज़ है, स्व क्या है, पर क्या है। ... अग्रेसरों ने ऐसा चलाया और त्यागी नाम धरनेवालों ने प्रोत्साहन दिया। पढ़ा-लिखा है, परन्तु वह पढ़ा-लिखा अपनी कल्पना से अर्थ करके दुनिया को चढ़ाया। क्यों? पण्डितजी! आपके ऊपर बहुत जिम्मेदारी है। समाज के अग्रेसर है। ... ऐसा है, वैसा है, सबकी जिम्मेदारी है। सेठ!

'**पुण्य उत्साहं उत्पादी, दोष आनंदनं कृते**'। उसका रौद्रध्यान है। आहाहा! मगनभाई! पुण्य उत्साह भी, जिसको पुण्य परिणाम में उत्साह लगा है, सावधानी उसमें लगी है, वह दोष है, बन्धन है, शुभभाव विकार है। उसमें आनन्द मानता है, वह रौद्रध्यान है। शब्द तो बहुत ... परन्तु कहाँ उसे (समझना है)। ये कमाना, कमाना, कमाना... कमाने में गया, सामनेवाले ने जो कहा, उसको जय नारायण! बस। पैसे खर्च कर दे। ग्यारह हजार ले जाओ, भाई! यहाँ कहते हैं, भगवान! वह तो राग आता है, मन्द राग हो, परन्तु उसमें

उत्साह इतना बढ़ा दे कि मानो मेरा कल्याण हो गया। समझ में आया? बहुत जीवों की मदद की, ऐसे शिक्षण में दे दिया, ऐसी पाठशाला बनायी। कौन बनाये? वह तो पर की पर्याय है, क्या तेरे से बनती है? तेरे भाव में राग की मन्दता हुई, उसमें उत्साह...

**मुमुक्षु :** .... हमारे पैसे से तो बनता है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल में भी उसका पैसा है (नहीं), कहाँ कि बने? धर्मचन्दजी!

**मुमुक्षु :** निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सम्बन्ध है। होता है उसके कारण से। निमित्त कहने में आता है, निमित्त से हुआ नहीं। बोलो तो मालूम पड़े। निमित्त है तो बना है, ऐसा नहीं।

**मुमुक्षु :** उसका निमित्त तो बनना न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लेकिन... वही स्पष्टीकरण किया। वह बननेवाला है तो बना है। निमित्त है तो बना, तो निमित्त नहीं हुआ, कर्ता हो गया। सेठ! अभी पाठशाला बनी एक लाख की, पाँच लाख की। हमने बनायी। बिल्कुल झूठ है। वह बननेवाली पर्याय जड़ की होनेवाली थी। उस समय में उससे हुई है, तेरे आत्मा से नहीं।

**मुमुक्षु :** किसने बनायी?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बनायी जड़ ने।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निमित्त कहने में आया। निमित्त आया, इसलिए बना—ऐसा नहीं।

**मुमुक्षु :** बनने में निमित्त का हिस्सा कितना टका?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक अंश टका नहीं। कहने में आता है। वह तो ... ऐसा निमित्त का ज्ञान कराया है।... से बने और निमित्त से बने तो वह कर्ता हो गया। वह स्वतन्त्र अनन्त परमाणु की पर्याय परावर्तन में जब (होनेवाली थी तब हुई है)। यह क्या बना? देखो! कौन बनाता है यहाँ? रामजीभाई? कहाँ गये? अब तक तो रामजीभाई प्रमुख थे। अभी उसके हस्ताक्षर चलती है। बनाते हैं वह? बना सकते हैं? कहाँ गये शान्तिभाई?

भाई! भगवान कहते हैं कि, तू तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप पर की पर्याय में कितना हिस्सा डालता है? जड़ की पर्याय में तेरा हिस्सा कितना गया है वहाँ कि तेरे से वह बना? वीतराग मार्ग त्रिलोकनाथ परमेश्वर,... यहाँ कहा न? ... '**दोष आनंदनं कृत**'। पुण्य (में) उत्साह दोष है। स्वभाव पवित्र है, उसकी तो तेरी दृष्टि है नहीं। उसमें तो उत्साह करता नहीं और पुण्यभाव में तेरा उत्साह चला गया। '**दोष आनंदनं कृत**' तूने दोष में आनन्द माना। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? बात तो भाई, वस्तु है ऐसी, उसमें कोई गड़बड़ चले? ... सम्यक् सच्चे ज्ञान में एक क्षण भी नहीं चले। ज्ञान, सच्चे ज्ञान में विरुद्धता हो तो एक कण नहीं चले। है न?

इस तरह संसार का कारण दोष है, उसमें प्रसन्न होकर तन्मय... प्रसन्न होता है, प्रसन्न हो जाता है। खुश हो जाए, खुश हो जाए कि ओहो..! हमने तो क्या किया! कितनी पाठशाला बनायी, कितने मकान बनाये, कितने ... बनाये, कितना फलाना बनाया। कौन बनाता है? धूल में भी बना नहीं सकते। ... परद्रव्य में घुस जाता है?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वह तो है नहीं। उससे परिणाम होता है, उसमें तुम क्या कर सकते हो? वीतराग की वाणी ऐसी कहती है और वस्तु का स्वभाव ऐसा है। ...

परमाणु अनन्त पदार्थ है। छह द्रव्य में पुद्गल पदार्थ है या नहीं? तो पुद्गल अनन्त है या नहीं? तो अनन्त पुद्गल द्रव्य अपना रखकर पर्याय उसमें होती है या नहीं? तो परकार्य में पर्याय उसके कारण से हो और दूसरा कहे कि मेरे कारण से हुई, (वह) मिथ्यादृष्टि मूढ़ वीतराग मार्ग लोप करके अपने में पर का कार्य मैंने किया ऐसा उत्साह करता है। शुभभाव में उत्साह करते हैं, यहाँ तो यह लेना है। समझ में आया? ... उत्साह। ओहोहो! चिल्लाने लगे, हों! तारणस्वामी ने तो व्यवहार को उड़ा दिया है। ... ऐसा कहे। ... फिर भी वह मूल आचरण-सम्यक् आचरण नहीं है। जिससे मुक्ति है, वह आचरण, वह विकल्प आया वह नहीं। विकल्प आया वह तो पुण्यबंध का कारण है। आता है बराबर है, परन्तु आया तो धर्म हो जाएगा, करते-करते अपने में कल्याण हो जाएगा, ऐसा तीन काल-तीन लोक में है नहीं। देखो! १६८। धर्म का स्वरूप।

**शुद्ध धर्म च प्रोक्तं च, चेतना लक्षणो सदा।**
**शुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन, धर्म कर्म विमुक्तयं ॥१६८॥**

देखो! प्र-उक्तं। भगवान ने ... ऐसा कहा। अहो! भगवान परमात्मा परमेश्वर वीतराग की वाणी में शुद्ध धर्म ऐसा कहा गया है। देखो! शुद्ध धर्म ऐसा कहा गया है कि सदा आत्मा का चेतना लक्षण है। राग, पुण्य, व्यवहार, विकल्प-फिकल्प उसका लक्षण है नहीं। समझ में आया? सदा चेतना लक्षण। '**चेतना लक्षणो सदा**'। भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन उसका सदा लक्षण है। क्या देह की क्रिया उसका लक्षण है? वह पूछा था न, (संवत्) १९९९ की साल में? चैतन्य लक्षण ... पदार्थ। कहो, समझे? आत्मा का लक्षण क्या? देह का ध्यान रखना वह। देह को सम्भालना, वह आत्मा का लक्षण। ... आत्मा का गुण क्या? १९९९ की बात है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। '**शुद्ध धर्म च प्रोक्तं**' भगवान त्रिलोकनाथ ने तो वह कहा है, '**चेतना लक्षणो सदा**'। ... तेरा स्वभाव में लक्ष्य और ध्येय जाना, वह चेतना लक्षण से लक्ष्य होनेवाला है। समझ में आया? आत्मा का लक्ष्य प्रतीत अनुभव, कोई विकल्प दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से आत्मा का ध्येय पकड़ने में आता नहीं। क्योंकि उसका वह लक्षण नहीं। समझ में आया? सदा चेतना लक्षण भगवान आत्मा का लक्षण कहा है। समझ में आया? यह चेतना जानना-देखना, जानना-देखना, जानना-देखना, जानना-देखना... भगवान त्रिकाल स्वरूप त्रिकाली आत्मा लक्ष्य (और) चेतना लक्षण। लक्षण से लक्ष्य होता है। समझ में आया? पुण्य-पाप, दया, दान, व्यवहार, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह राग है। वह राग चेतन का लक्षण नहीं है। समझ में आया? उसका लक्षण जानना-देखना, वह शुद्ध चैतन्य का लक्षण है। लक्षण से लक्ष्य पकड़ने में आता है। ऐसा भगवान की वाणी में आया है। समझ में आया? भावना है न। (इसलिए) बारम्बार वही शब्दों को दूसरी शैली से (कहते हैं)। कितनों को ऐसा लगता है कि वही बात बार-बार करते हैं। ... भावना के ग्रन्थ में ऐसी बात... समझ में आया?

'**शुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन**'। देखो! शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से। द्रव्यार्थिक शब्द है न? द्रव्य अर्थात् त्रिकाली शुद्ध वस्तु, अर्थिक अर्थात् प्रयोजन। नय अर्थात् ज्ञान का। जिसका ज्ञान का प्रयोजन शुद्ध द्रव्य है, उसको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। फिर से, '**शुद्ध**

**द्रव्यार्थिकनयेन**'। नय ज्ञान की पर्याय है, चेतना लक्षणवाली। समझ में आया? नयेन। शुद्ध द्रव्यार्थिक। शुद्ध त्रिकाली द्रव्य अर्थात् आत्मा, उसका जिस नय का प्रयोजन है, अर्थ अर्थात् प्रयोजन है, वह ज्ञान अपने शुद्ध द्रव्य को लक्ष्य करके, अपना प्रयोजन सिद्ध करती है, उस नय को शुद्ध द्रव्यार्थिक कहने में आता है। समझ में आया?

'**शुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन**' शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से त्रिकाल ज्ञायक चिदानन्द सत् स्वरूप परमानन्द एकरूप, अनन्त गुण भले हो, परन्तु उसका रूप एक अभेद है। उसकी दृष्टि। द्रव्यार्थिकनय है, वह नय ज्ञान है। और प्रतीत हुई, वह दृष्टि है। शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से... समझ में आया? वह धर्म, अपना शुद्ध स्वभाव त्रिकाल, उसको जिस नय ने दृष्टि और लक्ष्य में लिया, जो पर्याय निर्मल प्रगट हुई, वह धर्म सर्व प्रकार के कर्म से रहित है। ऐसी मोक्षमार्ग की श्रावक की पर्याय (है)। यह श्रावकाचार चलता है। भगवान का नाम स्मरण करना, वाणी याद करना, वाणी सुनना सब विकल्प है। देखो, क्या कहते हैं?

'**शुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन, धर्म कर्म विमुक्तयं**'। शुभाशुभ विकल्प ऐसा जो भावकर्म, उससे वह द्रव्य विमुक्त है। समझ में आया? द्रव्यकर्म की बात है नहीं, वह तो दूर रह गया। आत्मा, द्रव्यकर्म जड़ उससे भिन्न (है)। समझे? नोकर्म शरीर, वाणी से भिन्न और भावकर्म-पुण्य-पाप का भाव। '**धर्म कर्म विमुक्तयं**।' धर्म सर्व प्रकार की.. विमुक्त शब्द पड़ा है न? '**विमुक्तयं**' मात्र मुक्त शब्द नहीं है। बाद में कर्म निकाला। '**धर्म कर्म विमुक्तयं**' भगवान आत्मा अनन्त गुण राशि, उसे द्रव्यार्थिकनय से लक्ष्य में लेकर जो पर्याय में निर्मल अवस्था, सम्यग्दर्शन-ज्ञान अरागी परिणति हुई, उसको भगवान धर्म कहते हैं। वह धर्म मुक्ति का उपाय है। दूसरा कोई मुक्ति का उपाय है नहीं। समझ में आया? यह '**धर्म कर्म विमुक्तयं**'। सब कर्म-कार्य से विमुक्त है। ओहोहो! समयसार में छठ्ठी गाथा में आता है। ... कहो, समझ में आया? उसको धर्म कहते हैं। वीतराग की वाणी में उसको धर्म कहा है। उससे विपरीत कहे, वह वीतराग की वाणी और वीतराग को जानते नहीं। (उसे) वीतराग मार्ग का लोप करनेवाला कहते हैं। समझ में आया? १६८ (हुई)। १६९।

**धर्मं च आत्म धर्मं, रत्नत्रय मयं सदा।**
**चेतना लक्षणो यस्य, तस धर्म कर्म विवर्जितं ॥१६९॥**

इसमें विशेष स्पष्ट किया है, हों! रत्नत्रय कौन, कैसा रत्नत्रय? लोग कहते हैं, रत्नत्रय व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार। पण्डित लोग बहुत कहते हैं। पण्डित जितने परिचय में आये, वह बहुत कहते हैं। ...

'**धर्मं च आत्म धर्मं**' आत्मधर्म को भगवान वीतरागदेव धर्म कहते हैं। पुण्य-पाप का विकल्प, व्रतादि का विकल्प आत्मधर्म नहीं, वह तो राग है। समझ में आया? अथवा धर्म आत्मा का स्वभाव है। आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध स्वरूप, उसकी पर्याय प्रगट होना, वह स्वभाव आत्मा का धर्म है। वह तीनों कालों में... देखो! सदा कहते हैं न? सदा अर्थात् तीनों कालों में। कोई में ऐसा है कि पहले व्यवहाररत्नत्रय धर्म है और बाद में निश्चयरत्नत्रय में श्रावक को पुण्य का धर्म है। शास्त्र में आता है न? व्यवहार चले वहाँ आता है। श्रावक को पूजा और क्या कहते हैं? दान। दान, पूजा नित्य धर्मो। रयणसार में आता है। वह तो व्यवहार पुण्य की बात की है। ऐसा पुण्य आता है, पाप से बचने को। ये धर्म तो '**रत्नत्रय मयं सदा**'। तीनों काल में श्रावकाचार में, भूतकाल, वर्तमान और भविष्य में।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इमसें तो सब आया। भरत में, ऐरावत में या महाविदेह में कहीं भी सच्चा श्रावक हो, वह '**रत्नत्रय मयं सदा।**' यह श्रावकाचार है। श्रावक में तीन रत्नत्रय होते हैं। पंचम गुणस्थान में भी शुद्ध स्वरूप की प्रतीत, अनुभव, उसका ज्ञान और लीनता—यह तीनों रत्न श्रावक को भी है, ऐसा कहा। देखो! मुनि को ही तीन रत्न होते हैं और श्रावक को नहीं, ऐसा नहीं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गप्प मारते हैं। यह तो उसको कठिन लगे। झूठा है, ऐसा ही कहते हैं। जिसने सुना हो, उसे खबर भी नहीं होती।

'**रत्नत्रय मयं**' अभेद कहा न? भाई! देखो! '**रत्नत्रय मयं**' भगवान आत्मा जैसा अनन्त गुण का एकरूप शुद्ध है, उसकी दृष्टि, ज्ञान, लीनतामय आत्मा हो गया। आत्मा हो गया, ऐसा कहते हैं। तीनों पर्याय में आत्मा अभेद हो गया। रत्नत्रयमय है, आत्मधर्म। उसका नाम आत्मधर्म, उसका नाम श्रावकधर्म, उसका नाम रत्नत्रयधर्म, उसका नाम

मोक्षमार्ग। घर के पुस्तक के अर्थ की खबर नहीं। पैसे की सब खबर है। इतना पैसा है, इतना ब्याज आता है, इतना ... समझ में आया?

**'चेतना लक्षणो यस्य'** क्या कहते हैं? जिसका लक्षण चेतना है, यह स्व अनुभव है। चेतना है न, चेतना-अनुभव। कितने शब्द लिये हैं, देखो! एक तो धर्म तो आत्मा का स्वभाव, तीनों काल में रत्नत्रयमय है। निश्चयरत्नत्रय, हों! ... शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसकी अन्तर-दृष्टि, ज्ञान और लीनता का जितना अंश प्रगट हुआ, वही रत्नत्रय धर्म, वही आत्मधर्म। वही तीनों काल में रहनेवाला धर्म। और **'चेतना लक्षणो यस्य'**। उसका अनुभव, वह धर्म। रत्नत्रय का अनुभव स्वभाव का करना, वह धर्म। कैसा है? सर्व कर्म की उपाधि से रहित है। **'कर्म विवर्जितं'** .... लिया है। विमुक्तं। विमुक्त कहो या विवर्जितं, विवर्जितं। जिसमें जड़क्रिया नहीं। नोकर्म। जड़कर्म की क्रिया-पर्याय नहीं और पुण्यादि विकल्प भावकर्म की क्रिया नहीं। ऐसा **'कर्म विवर्जितं'** अपनी पर्याय में आत्मस्वभाव सर्वज्ञ ने कहा ऐसा आत्मा, हों! अज्ञानी कहे, वह आत्मा नहीं। ऐसे आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और लीनता वह सर्व **'कर्म विवर्जितं'** है। उसमें रागादि के परिणाम से रहित को... देखो! **'तस धर्म कर्म विवर्जितं'** वह धर्म कर्म की उपाधि से रहित है। यहाँ भी ... कहा। समझे? धर्म कहीं बाहर में नहीं है। बाहर का अर्थ शरीर, वाणी की क्रिया में तो नहीं है, परन्तु पुण्य के परिणाम में धर्म नहीं है। वह बाह्य (है)। १६९ हुई। समझ में आया? शुभ विकल्प उत्पन्न होता है, वह भी बाहर है, अन्तर स्वरूप में नहीं है। पुण्य परिणाम में धर्म नहीं। बाहर में नहीं, अन्तर में है। उसे श्रावकाचार कहने में आता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

४

आसोज शुक्ल १०, शुक्रवार, १६-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-१८३, १८४, १८९, १९५, १९८, प्रवचन - २१

.... समझ में आया? .... ऐसा कहते हैं। पहली चीज़ आत्मा ध्यान करने योग्य क्या चीज़ है और ध्यान क्या चीज़ है, ध्याता कौन है और ध्यान का फल क्या है और पर्याय एवं द्रव्य क्या चीज़ है—ऐसी पहली समझ बिना, यथार्थ निर्णय बिना, सम्यग्दर्शन बिना ऐसा ध्यान होता नहीं। कहो, समझ में आया? कहते हैं, देखो! १८३

**पिण्डस्थ ज्ञान पिण्डस्य, स्वात्मा चिन्ता सदा बुद्धै।**
**निरोधं असत्य भावस्य, उत्पाद्यं शास्वतं पदं॥१८३॥**

दूसरा श्लोक।

**आत्मा सद्भाव आरक्तं, पर द्रव्यं न चिन्तये।**
**ज्ञान मयो ज्ञान पिण्डस्य, चेतयन्ति सदा बुद्धै॥१८४॥**

पिण्डस्थ ध्यान.. पहला शब्द है न अन्वयार्थ में? पिण्ड अर्थात् शरीर। उसमें स्थ अर्थात् रहा हुआ। आत्मा शरीर में रहा हुआ, उसका ध्यान करना, उसका नाम पिण्डस्थ ध्यान है। नाम सुने नहीं हो। यह श्रावक को कहते हैं, पण्डितजी! संसार का आर्तध्यान और रौद्रध्यान करते हैं या नहीं? ये व्यापार-धन्धा आदि क्या है? आर्तध्यान है या नहीं? आर्तध्यान-आर्तध्यान है, पापध्यान है। व्यापार-धन्धा आदि का परिणाम आर्तध्यान-पापध्यान है। राग में एकाग्रता है न।

श्रावक उसको कहते हैं कि श्रावक का आचार, उसकी पर्याय में आचार। पर्याय में-अवस्था में-कैसा होता है? पहले आत्मा क्या चीज़ है, सर्वज्ञ क्या कहते हैं? देह से

भिन्न पिण्डस्थं। पिण्ड अर्थात् शरीर, उसमें रहा हुआ भगवान आत्मा। कहो, समझ में आया? '**पिण्डस्थ ज्ञान पिण्डस्य**। शरीर पिण्ड में रहा हुआ मैं अकेला ज्ञान का पिण्ड हूँ। पिण्ड को क्या कहते हैं? तुम्हारी भाषा में (क्या) कहते हैं? पिण्ड कहते हैं। ऐसा लड्डू का पिण्ड होता है न? ऐसे आत्मा... अनन्त आत्मा अनन्त भिन्न-भिन्न। मेरा आत्मा कैसा है, यहाँ ध्यान करने के योग्य है? देखो! यहाँ पंचम गुणस्थान में ध्यान करने योग्य कहा है। वे लोग कहते हैं, चौथे-पाँचवें में कुछ नहीं होता। वह तो आगे मुनि को सातवें (गुणस्थान में) होता है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** छठे में भी नहीं होता।

भाई! देखो! तारणस्वामी क्या कहते हैं? पहले आत्मा श्रावक उसको कहना कि अपना आत्मा, देह का रजकण, कर्म का अस्तित्व है, परन्तु उससे मैं भिन्न हूँ। और पर्याय में पुण्य-पाप का, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध का राग होता है, उससे भी मैं भिन्न हूँ। और मेरा अन्तर अनन्त ज्ञान, दर्शन, शान्ति आदि स्वभाव से मैं अभिन्न हूँ। ऐसा पहले निर्णय में सम्यग्दर्शन होना चाहिए। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन बिना ऐसा ध्यान होता नहीं। श्रावकाचार सम्यग्दर्शन बिना होता नहीं। क्या कहा? देखो!

पिण्डस्थ ध्यान '**ज्ञान पिण्डस्य**' ज्ञान समूहरूप आत्मा का ध्यान है। '**ज्ञान पिण्डस्य**' दूसरा शब्द पड़ा है न? '**ज्ञान पिण्डस्य**'। अकेला चेतन्यपुंज मैं हूँ। अनन्त गुणमय हूँ। उसके साथ अविनाभावी, चैतन्य के साथ अनन्त गुण हैं। वह मैं ही भगवान हूँ। शरीर में विराजमान मैं ही पिण्डस्थ परमात्मा हूँ। बहुत जिम्मेदारी। यह तो श्रावक हो गया, लो! समझे बिना श्रावक की क्रिया थोड़ी करे, ऐसा करे, वह श्रावक नहीं है। यह श्रावकाचार का वर्णन है।

**मुमुक्षु :** जैनकुल में...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जैनकुल में जन्मा, इसलिए जैन हो गया, लो!

पहले चीज़ क्या है? भगवान सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव किसको आत्मा कहते हैं? कैसा आत्मा है? कितनी शक्ति अन्दर है? शक्ति गुण है, शक्तिवान द्रव्य है और यह

ध्यान उसकी पर्याय है। ध्यान उसकी पर्याय है। समझ में आया? ध्यान की दशा को पर्याय कहते हैं। वह पर्याय किसमें स्थित होने से ध्यान होता है? कि '**ज्ञान पिण्डस्य**'। ज्ञान का पिण्ड अनन्त गुण का स्वरूप मेरा स्वभाव, मेरा धाम चैतन्य। 'ज्यां चैतन्य त्यां अनन्त गुण, केवली बोले ऐम।' भगवान की वाणी में आया, जहाँ चैतन्य है, वहाँ अनन्त गुण अन्दर धाम में विराजमान है। ऐसा पहले दृष्टि में, दर्शन में निर्णय किया हुआ हो, उसके बाद '**ज्ञान पिण्डस्य**' ध्यान करता है। ओहोहो! देखो! यह ध्यान करना श्रावक का आचार (है)।

वे लोग कहते हैं, षट् कर्म। भगवान के दर्शन करना, गुरु की सेवा करना... ऐसे षट् कर्म आते हैं न? वह तो विकल्प है, वह तो राग है। वह श्रावक का आचार नहीं। वह तो, यह निश्चय आचार हो तो विकल्प को व्यवहार आचार कहने में आता है। यह निश्चय आचार नहीं हो, अकेला विकल्प आचार हो तो उसको व्यवहार आचार भी नहीं कहने में आता। डालचन्दजी! यहाँ थोड़ा समझना पड़ेगा, हों! यहाँ फुरसत लेकर आये हैं न। दिवाली आयेगी तो वापस जाएँगे। नरम व्यक्ति हैं।

**मुमुक्षु :** ... निकाल के करना चाहिए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आवश्यक अर्थात् अवश्य करनेयोग्य, जरूर करने लायक। श्रावक को जरूर करने लायक, उसका नाम आवश्यक है। षट् आवश्यक तो विकल्पवाला शुभराग है। पण्डितजी! निश्चय आवश्यक हो, उसको षट् आवश्यक व्यवहार से कहने में आता है।

**मुमुक्षु :** यह परम आवश्यक हो गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह परम आवश्यक है। ठीक कहते हैं। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, ज्ञान समूह। ओहोहो! एक समय का ज्ञान पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. अचिन्त्य स्वभाव वह मैं, मेरा स्वभाव पूर्ण ज्ञान हूँ। बुद्धि-बुद्धिमानों के द्वारा, देखो! बुद्धिमान क्यों लिया? ज्ञानी द्वारा। अज्ञानी द्वारा ऐसा ध्यान होता नहीं। श्रावक हुआ है, सम्यग्दृष्टि हुआ है तो वह शब्द लिया है। है न? बुद्धि। बुद्धि शब्द लेने का कारण है कि श्रावक सम्यग्दृष्टि है। आत्मा का राग से, पर से, शरीर से पूर्णानन्द स्वरूप भिन्न है, ऐसा भान हुआ है। उसको यहाँ बुद्धि—ज्ञानी कहने में आया है।

ये बुद्धि-बुद्धिमानो, उसको बुद्धिमान कहते हैं। अपना आत्मा ज्ञान में, दर्शन में, प्रतीत में लिया है, उसको यहाँ बुद्धिमान कहते हैं। दूसरी बुद्धि को यहाँ बुद्धिमान कहते नहीं। धर्मचन्दजी! सदा। देखो! निरन्तर, निरन्तर। अन्तर स्वरूप मैं विकल्परहित, रागरहित, भेदरहित मान, वाणी, देह के संगरहित पूर्ण शुद्ध हूँ, ऐसा पहले ज्ञान, सम्यग्दर्शन तो हुआ है, बाद में निरन्तर स्वात्म चिन्ता-अपने आत्मा का ध्यान करना योग्य है। आत्मा, वह तो द्रव्य पूर्ण शुद्ध हुआ और चिन्ता, वह ध्यान हुआ, वह पर्याय हुई। समझ में आया? चिन्ता अर्थात् विकल्प की बात यहाँ नहीं है। चिन्ता का अर्थ यहाँ विकल्प नहीं है। आत्मा एक समय में पूर्ण स्वरूप, उसका ध्यान, उसका नाम यहाँ चिन्ता कहने में आया है। अभी तो वस्तु समझ में आयी नहीं तो ध्यान किसका करे? समझ में आया? फिर ऐसे ही बैठकर, ओम, ओम, ओम, णमो अरिहंताणं.. सामायिक... तत्त्वेषु मैत्री, गुणषु प्रमोदं... वह सामायिक। वह सामायिक नहीं है। सामायिक तो पहले अपना स्वरूप अनुभव में सम्यग्दर्शन में आया हो, बाद में ध्यान करते हैं तो उसको सामायिक होती है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उपयोग लगा, विकल्प में लगे। कहाँ लगे? सामायिक ली है। गाथा-३१४ में सामायिक लिया है। ३१४ है। मिथ्या सामायिक की बात की है, देखो!

**अनेक पाठ पठनंच, वन्दना श्रुत भावना।**
**सुद्ध तत्त्वं न जानन्ते, सामायिक मिथ्या उच्यते ॥३१४॥**

पण्डितजी! पढ़ते नहीं, दरकार करते नहीं और ऐसे ही जीवन चला जाए और (माने कि) हम धर्म करते हैं। यह कहते हैं, देखो! '**अनेक पाठ पठनंच**' अनेक पाठों का पढ़ना, वह भी विकल्प है। '**वन्दना श्रुत भावना**'। भगवान की वन्दना करना, गुरु की वन्दना करना, शास्त्र की भावना करना, ये सब विकल्प है, राग है। यदि '**सुद्ध तत्त्वं न जानंते**', ऐसा करने पर भी, शास्त्र पढ़ने पर भी और वन्दना, शास्त्र की शुद्ध भावना-बारम्बार वांचन करने पर भी '**सुद्ध तत्त्वं न जानंते**' शुद्ध ज्ञानानन्द मेरे स्वरूप में अनन्त गुण भरे हैं, मैं ही परमात्मस्वरूप से भरा हूँ, ऐसा शुद्ध तत्त्व का ज्ञान नहीं है तो वह सामायिक मिथ्या कहलाती है। है? समझ में आया? सामायिक करते हैं। किसकी सामायिक? तुझे अभी तत्त्व की तो खबर नहीं। मिथ्या सामायिक है।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो अनादि से करता है। समझ में आया? देखो! तारणस्वामी क्या कहते हैं, खबर नहीं तुम्हें और मैं तारण समाज है, तारण समाज है। परन्तु क्या कहते हैं खबर नहीं। बराबर है या नहीं?

कहते हैं कि तेरी चीज़ '**सुद्ध तत्त्वं न जानंते**'। भगवान आत्मा मैं पवित्र ज्ञान, आनन्द शुद्ध निर्विकल्प परमात्मा हूँ। पर्याय में मेरी दशा भले मलिन हो, लेकिन मेरा स्वभाव मलिन नहीं, ऐसा अनुभव दृष्टि में आया। ऐसा शुद्ध तत्त्व यदि ज्ञान में नहीं आया, विचार में नहीं आया, प्रतीत में नहीं आया, दर्शन में नहीं आया, वह सामायिक करने बैठता है (तो) वह '**सामायिक मिथ्या उच्यते**'। वह सामायिक मिथ्यादृष्टि की मिथ्या है। सामायिक है नहीं। समझ में आया? बहुत बात की है। यहाँ तो सामायिक याद आ गयी।

देखो, यहाँ चलते अधिकार में क्या कहते हैं? '**स्वात्म चिन्ता**'। चिन्ता का अर्थ यहाँ विकल्प नहीं है। स्वरूप पूर्ण ज्ञान, आनन्द जो पहले निर्णय सम्यक् में हुआ है, वह आत्मा के झुकाव में अपनी पर्याय में द्रव्य की ओर झुकाव, ध्यान। असत्य भाव से निरोध। देखो! क्या कहते हैं? एक तो स्वात्मा ध्रुव त्रिकाल ज्ञायकभाव अनन्त गुण का पिण्ड। देखो! इसमें तीन बोल लेते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों लेते हैं। क्या कहते हैं? ध्रुव स्वात्मा ज्ञायक त्रिकाल अनन्त गुण का पिण्ड। चिन्ता, वह पर्याय है-उत्पाद। उसको विशेष कहते हैं। असत्य भाव से निरोध। विपरीत राग और द्वेषादि भाव का व्यय। समझ में आया? पुण्य और पाप का विकल्प राग है, उसका व्यय। और '**उत्पाद्यं सास्वतं पदं**'। अविनाशी मोक्षपद पाना योग्य है। वह उत्पाद। एक गाथा में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों ले लिये हैं। समझ में आया? (यह) जैनदर्शन के सिवाय तीन काल में कहीं हो सकता नहीं। दूसरे के साथ मिलान करते हैं, लो, यहाँ है। तारणस्वामी ने कहा है, फलाने ने कहा, ढीकना ने कहा। यह तो जिनाज्ञा अनुसार जिनागम अनुसार एक-एक शब्द है। समझ में आया? दूसरी जगह, दूसरे के साथ मिलान करे कि ... है, फलाने के साथ है, उसके साथ है,... वह तत्त्व का बड़ा अन्याय करता है। समझ में आया?

क्या कहा? देखो! एक तो आत्मा वस्तु, उसका ध्यान करके पर्याय उत्पन्न हुई।

अब क्या कहते हैं ? असत्य भाव पुण्य-पाप का विकल्प उत्पन्न नहीं होता है, व्यय होता है। और वह ध्यान करके क्या हो जाता है ? '**उत्पाद्यं सास्वतं पदं**'। निर्मल पर्याय उत्पन्न होकर केवलज्ञान उत्पन्न होता है। यह केवलज्ञान उत्पाद पर्याय है। समझ में आया ? वस्तु त्रिकाली है, उसकी ध्यान पर्याय निर्मल है, यह करते-करते विकार का व्यय हो जाता है और केवलज्ञान मोक्षपर्याय का उत्पाद होता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्, एक गाथा में तीनों सिद्ध किये। समझ में आया ? अपने आप पढ़े तो कुछ समझ में आये ऐसा नहीं है। ऐसे ही तुम्बड़ी में कंकर लगे। सेठ! समझने की चीज़ क्या है, सर्वज्ञ आज्ञा अनुसार, जिनागम अनुसार आत्मा किसको कहते हैं, उसका उत्पाद-व्यय-ध्रुव कैसा है, ऐसा समझे बिना उसका अर्थ यथार्थ होता नहीं। समझ में आया ?

अविनाशी मोक्षपद पाना योग्य है, देखो! '**आत्मा सद्भाव आरक्तं**' अपने सत् स्वभाव में लवलीन हो जावे। यह तो श्रावकाचार में कहा है। आहा! अपना आत्मा ध्यान के काल में अपने स्वभाव में आरक्त-आरक्त, आ-समस्त प्रकार से लीन हो जाए। वह पर्याय हुई। '**पर द्रव्यं न चिंतये**'। परद्रव्य की चिन्ता मिट जावे। अरिहन्त, अरिहन्त, सिद्ध, सिद्ध, ओम, ओम, ये सब परद्रव्य हैं। ओम, ओम, ओम.. ये सब तो विकल्प है, परद्रव्य है। अरिहन्त है, अरिहन्त का ध्यान, अरिहन्त का ध्यान, अरिहन्त-सिद्ध परद्रव्य हैं। भगवान का समवसरण परद्रव्य है। आत्मा से पंच परमेष्ठी परद्रव्य भिन्न हैं। समझ में आया ? तो '**पर द्रव्यं न चिंतये**'। भारी बात भाई! श्रावक के लिये ऐसी जिम्मेदारी!

**मुमुक्षु** - '**पर द्रव्यं न चिंतये**' तो धर्म कब होगा ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धर्म कब होगा ? धूल में शरीर से धर्म होता है ? शरीर की क्रिया से धर्म तो नहीं, दया, दान का विकल्प आता है, ओम.. ओम.. ओम.. वह विकल्प है, उससे भी धर्म नहीं है। वह तो राग है। समझ में आया ?

'**पर द्रव्यं न चिंतये**' परद्रव्य का राग-विकल्प नहीं करना। ऐसे अरिहन्त हैं, ऐसे सिद्ध हैं, ऐसे पंच परमेष्ठी हैं, ऐसे गुरु हैं और ऐसा शास्त्र है, वह सब परद्रव्य है। देव-गुरु-शास्त्र भी आत्मा से परद्रव्य है। वाणी भी आत्मा से परद्रव्य है। तो कहते हैं, '**पर द्रव्यं न चिंतये**'। भारी बात, भाई! ज्ञान में-समझ में यह बात न ले, उसका अनुभव और दृष्टि

कहाँ-से हो ? और ध्यान तो कहाँ-से हो ? ख्याल भी नहीं है चीज़ का। परद्रव्यं-परद्रव्य की चिन्ता मिट जावे। परद्रव्य की चिन्ता का अर्थ, वह तो लम्बी (बात है)। परन्तु '**पर द्रव्यं न चिंतये**' ऐसा लिया है। अपने सिवाय कोई भी स्त्री, कुटुम्ब, परिवार या देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य का विकल्प नहीं किया जावे, बुद्धि-पण्डितों के द्वारा। कहो, समझ में आया ?

वह शब्द पड़ा है, भाई! पहले में भी '**सदा बुद्धै**' था। १८४ में भी '**सदा बुद्धै**' अन्तिम पद में है। उसमें प्रथम पंक्ति में था। ऐसा कहने का कारण क्या है ? पण्डितों द्वारा। पण्डितों का अर्थ पढ़ा-लिखा है, ऐसा नहीं। बुद्धि का अर्थ किया। आत्मा और उसकी शक्तियाँ अन्तर में क्या है, उसका भान हुआ, उसका नाम यहाँ पण्डित कहने में आया है। पहले कहा था न ? '**सदा बुद्धै**' ? यहाँ भी '**सदा बुद्धै**' (कहा है)। लोगों को बहुत ... लगे। समझ में आया ?

बुद्धि-ज्ञानियों द्वारा। वास्तव में तो बुद्धि का अर्थ यह है-ज्ञानियों द्वारा। सम्यग्ज्ञानी द्वारा। अपने स्वभाव का बोध-भान हुआ है, ऐसे सम्यग्ज्ञानियों द्वारा '**ज्ञान मयो ज्ञान पिण्डस्य चिंतयंति**'। ज्ञानमय ज्ञानघन आत्मा का ही चिन्तवन है। समझ में आया ? '**ज्ञान पिण्डस्य**' कहा न ? उसका अर्थ घन किया। ज्ञानमयी। इतना शब्द है न ? '**ज्ञान मयो ज्ञान पिण्डस्य**'। १८४। ज्ञानमय ज्ञानघन। ज्ञानमय-अकेला ज्ञान का घन पुंज है। ऐसा आत्मा, उसका चिन्तवन अर्थात् एकाग्रता अन्तर में पर्याय से लीन होना, उसका नाम श्रावकाचार का ध्यान कहने में आता है। कहो, समझ में आया ? १८९। वह भी दो (गाथाएँ) हैं। रूपातीत की बात है। समझ में आया ? अब रूपातीत ध्यान। श्रुतज्ञान के आधार से अरिहन्त का ... शुद्ध आत्मा का स्वरूप विचार करे। यह तो व्यवहार है। यहाँ तो अन्दर के निश्चय की बात की है।

**रूपातीत व्यक्त रूपेन, निरंजनं ज्ञानमयं ध्रुवं।**<br>
**मति श्रुत अवधि दिष्टं, मनपर्यै केवलं ध्रुवं॥१८८॥**<br>
**अनन्त दर्शन ज्ञानं, वीर्य अनन्त सौख्यं।**<br>
**सर्वज्ञं सुद्ध द्रव्यार्थं, शुद्धं सम्यक्दर्शनं॥१८९॥**

रूपातीत ध्यान। मूर्तिकरहित, रागरहित अपना स्वरूप रूपातीत सिद्ध समान। सिद्ध समान अपने स्वरूप को यहाँ रूपातीत कहने में आया है। '**रूपातीत**'—रूपरहित '**व्यक्त रूपेन**' प्रगटरूप से जैसा सिद्ध है प्रगटरूप से, वैसा ही मैं हूँ।

**मुमुक्षु :** कब ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभी। कब क्या। समझ में आया ? शक्तिरूप में तो अनन्त दर्शन, ज्ञान आदि जितने शुद्ध गुण हैं, वह मेरी शक्ति में पड़े हैं। मैं परिपूर्ण आठ गुणों से अलंकृत (हूँ)। आता है न ? भाई ! नियमसार। नियमसार में आता है न ? आठ गुण। पर्याय न ?... अपने आत्मा में अन्दर पेट में, अन्तर पेट में ज्ञान के उदर में, शक्ति के उदर में आठ गुण, जैसे सिद्ध हैं, वैसे मेरे में पड़े हैं। समझ में आया ? यह तो जैन में जन्म लिया। जैन परमेश्वर क्या कहते हैं और क्या गुरु कहते हैं, क्या शास्त्र कहते हैं, भगवान जाने। भगवान तो जानते ही है न।

कहते हैं, रूपातीत ध्यान प्रगटरूप से सर्व मैल से रहित। कहो, समझ में आया ? कर्म-कर्म उसमें है नहीं, ऐसा मैं आत्मा (हूँ), मेरा कर्म से सम्बन्ध है नहीं। वर्तमान में कर्म से सम्बन्ध है नहीं। शरीर, कर्म से सम्बन्ध है ही नहीं। पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। न हो तो सम्बन्ध रहित दृष्टि होती नहीं। सम्बन्ध है, मेरे स्वभाव के साथ सम्बन्ध नहीं है। व्यवहार हो गया। व्यवहार का निषेध किया। कर्म मैल से रहित, '**ज्ञानमयं ध्रुवं**'। मैं तो ज्ञानस्वरूप अविनाशी आत्मा होता है, मैं अविनाशी आत्मा हूँ। कहो, समझ में आया ? जहाँ मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल.. देखो ! तारणस्वामी ने ज्ञान की पाँच पर्याय ली है। आत्मा त्रिकाल है—द्रव्य; उसमें ज्ञानगुण त्रिकाल है, वह शक्ति; उसकी पर्याय पाँच है, वह अवस्था। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों ले लिये हैं। आत्मा वस्तु है, वह द्रव्य त्रिकाल। उसमें अनन्त शक्तियाँ। उसमें ज्ञानगुण है। वह गुण ध्रुव शक्ति है। उसकी पर्याय, ज्ञानगुण की पाँच पर्याय है। पर्याय समझते हो ? डालचन्दजी ! पर्याय-अवस्था। जैसे सोने की डली होती है, फिर कुण्डल-कड़ा ऐसी अवस्था होती है। ऐसे आत्मा वस्तु (है), ज्ञानस्वभाव त्रिकाल ध्रुव गुण, और वर्तमान उसकी मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल, ये पाँच पर्याय (है)। ऐसा आत्मा जानकर,... क्या कहते हैं ? देखो ?

ये पाँचों एकरूप नित्य दिखलायी पड़ते हैं। पाँच में भेद नहीं देखना। भाई ! निर्जरा

की गाथा है न? २०४। वह शैली है। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय.. ये शैली है। मूल तो समयसार में से (चली आयी है)। २०४ गाथा है न? पाँच पर्याय नहीं देखना। पाँच पर्याय एक को अभिनन्दन करती है। आता है न? निर्जरा अधिकार में आता है। वैसे आत्मा... पाँच पर्याय पर भेद पर लक्ष्य नहीं करना। ओहोहो! कठिन बात, भाई! समझ में आया? पाँच भेद होने पर भी त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव में एकाग्र होने से पाँच का भेद मालूम नहीं होता। वे पाँचों अभेद को अभिनन्दन करते हैं। स्वभाव ओर की एकता के पाँच होने पर भी अभेद को अभिनन्दते हैं। आहाहा! कठिन बात। पाठ लिया न? '**मति श्रुत अवधि दिष्टा, मनपर्यै केवलं ध्रुवं**' है। परन्तु एकरूप दिखलायी पड़ता है। पाँच भेद नहीं। स्वरूप की दृष्टि करने से और अन्तर्मुख ध्यान करने से पाँच पर्याय का भेद नहीं दिखता। है सही। समझ में आया? होने पर भी वहाँ पर्यायदृष्टि नहीं है। वस्तु पर दृष्टि है तो पाँच पर्याय का लक्ष्य नहीं करके अभेद ध्रुव अकेला आत्मा देखते हैं। उसमें दृष्टि लगाना। उसका नाम श्रावक आचार का धर्मध्यान कहने में आया है। समझ में आया?

अनन्त दर्शन। देखो! पर्यायभेद लिया? नहीं। अन्दर में देखा क्या? अनन्त दर्शन। वस्तु बेहद ज्ञानस्वरूप ध्रुव (है)। यह तो कथन करना है न। बाकी अनन्त ज्ञान और दर्शन, ऐसा भेद भी अन्दर नहीं है। समझ में आया? समझने में क्या कहे? समझने की भाषा ऐसी है। तो कहते हैं कि पाँच पर्याय का ध्यान (नहीं), एकरूप देखना। एकरूप में अन्दर क्या है? अनन्त ज्ञान। पहले अनन्त दर्शन लिया है। अनन्त दृष्टा शक्ति आत्मा में एकरूप ध्रुव पड़ी है। अनन्त ज्ञान। दर्शन है अभेद है। अभेद का मतलब वह स्व-पर को भिन्न नहीं जानता। एकरूप देखता है। ऐसी शक्ति आत्मा में है। ज्ञान का अर्थ प्रतिच्छिद है। परिछिन्न। प्रत्येक द्रव्य, गुण, पर्याय को भिन्न-भिन्न करके जाने, उसका नाम ज्ञान। दर्शन कोई द्रव्य-गुण का घ्भेद नहीं करके सामान्य सत्ता अवलोकन उपयोग को दर्शन कहते हैं। ज्ञान भिन्न-भिन्न जाने। ये द्रव्य है, ये गुण है, ये पर्याय है। भेद नहीं। परन्तु भेद जानने का स्वभाव उसका है। ऐसा ज्ञान अनन्त ज्ञान मेरे में पड़ा है। स्व-पर को सबको देखे-जाने।

अनन्त वीर्य। मेरे स्वरूप में अनन्त बल है। शक्ति अनन्त वीर्य है। अनन्त स्वचतुष्टय की रचना करे, ऐसा मेरा सामर्थ्य है। ऐसा द्रव्य का ध्यान करे, वस्तु का ध्यान करे। अपना स्व पदार्थ का समकिती को निर्णय हुआ है, बाद में ऐसा ध्यान करता है। अनन्त सुखमय

है। भीखाभाई! इसमें तो बाहर का सब छूट जाता है। आहाहा! ... कहो, समझ में आया? यह बात मीठी लगे। निश्चय की है न। ... लगता है? यह तो अकेली वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी ध्यान।

कहते हैं, रूपातीत ध्यान करनेवलाा कैसा होता है? .. वर्णन किया है। कोई कहता है, मुनि के आचार में ऊपर के शुक्लध्यान की बात है, ऐसा नहीं। डालचन्दजी! देखो न, इसीलिए तो श्रावकाचार लिया है। पहले यह लो, बाद में ज्ञानसमुच्चयसार, उपदेशशुद्ध सार पीछे-पीछे आयेगा। बहुत समय हो गया न। थोड़ा उसमें से ले ले। श्रावक का आचार। पंचम गुणस्थान का निश्चय सत्य आचार क्या है? उसका वर्णन है। आचार पर्याय है। श्रावकाचार की पर्याय है, द्रव्य-गुण त्रिकाली है। त्रिकाली द्रव्य-गुण में एकाकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान होकर विशेष ध्यान करना, वह श्रावक का आचार-पर्याय निर्मल निर्विकल्परूप पर्याय श्रावक का निश्चय आचार है। बीच में विकल्प हो, वह व्यवहार है। समझ में आया? शुभराग हो। नाम स्मरण, वाणी का बहुमान, भगवान का बहुमान, पंच परमेष्ठी का ... हो, सब विकल्प है, शुभराग है, पुण्यबन्ध का कारण है। निश्चय आचार हो तो उसको व्यवहार आचार का आरोप देने में आता है। निश्चय यहाँ नहीं है, तो व्यवहार भी उसको नहीं है। व्यवहाराभास है। समझ में आया?

अब, जैनदर्शन आत्मा को सब ... साथ मिलाते हैं। पण्डितजी! है? समन्वय। नानक, कबीर, उसे गन्ध भी कहाँ थी, क्या द्रव्य है और क्या वस्तु है। छह द्रव्य खबर थे नानक और कबीर को? अरे! ... स्थानकवासी में। उसे कुछ खबर नहीं। एक सम्प्रदाय की रीत में मूर्ति को ... अध्यात्म हो गया। सम में आया? अभ्यास नहीं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। ... सब बातें.. वैरागी व्यक्ति था। वेदान्त की दृष्टि। अद्वैत एक आत्मा। बस। ये चीज़ क्या है? गन्ध भी नहीं है। क्या कहते हैं? देखो!

वीर्य अनन्त और अनन्त सुख। मेरे आत्मा में बेहद (सुख भरा है)। पहले श्रद्धा करे, हों! विचार करे, तब तक भी विकल्प है। लेकिन ऐसे आत्मा में एकाग्र होना, उसका नाम ध्यान है। पहले विचार में, मनन में, श्रद्धा में, ज्ञान में तो ले कि यह चीज़ ऐसी है।

इसके सिवा दूसरी चीज़ होती नहीं। उससे विरुद्ध की प्रशंसा, अनुमोदना, सम्मतपना चला जाए। एक आत्मा ऐसा परिपूर्ण परमात्मा मैं ही हूँ। मैं ही मेरे में ध्यान करने से मेरे परमात्मा की प्राप्ति होती है। परमात्मा दूसरे का ध्यान करने से अपना परमात्मा परमात्मा नहीं होता। समझ में आया ? क्या कहा ? देखो !

अनन्त सुखमय है। अब विशेष लिया। वह सर्वज्ञ है। यह आत्मा सर्वज्ञ है। ओहो ! मैं सर्वज्ञ हूँ। द्रव्य में, हों ! पर्याय में सर्वज्ञ हो तो ध्यान किसका ? फिर ध्यान कौन करे ? सर्वज्ञ को ध्यान होता है ? कितनी बात ली है, देखो ! एक तो ज्ञान की पाँच पर्याय ली कि पाँच पर्याय दिखती नहीं, अभेद। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य, अनन्त सुख। सर्वज्ञ। सर्वज्ञ है। मेरा आत्मा ही सर्वज्ञ है। सर्व को जाननेवाला। मेरी शक्ति पर को-स्व को पूर्ण तीन काल, तीन लोक, अपना त्रिकाली द्रव्य-गुण-पर्याय सबको जानने की शक्ति रखनेवाला सर्वज्ञ मैं हूँ। समझ में आया ?

शुद्ध सम्यग्दर्शनं। शुद्ध आत्मपदार्थ है। ऐसा शुद्ध आत्मपदार्थ है, ऐसा अनुभव दृष्टि करना, यही शुद्ध सम्यग्दर्शन है। है ? पण्डितजी ! '**सुद्धं द्रव्यार्थं, सुद्धं सम्यक्दर्शनं**'। ऐसा शुद्ध पदार्थ एकरूप अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, सुख, सर्वज्ञ ऐसी पूर्ण वस्तु में अनन्त शक्ति हैं। ऐसा आत्मा उसकी अन्तर में अनुभव करके प्रतीत-श्रद्धा, अनुभव करना, उसका नाम शुद्ध सम्यग्दर्शन है। शुद्ध का अर्थ सच्चा सम्यग्दर्शन है। शुद्ध का अर्थ निश्चय सम्यग्दर्शन है। निश्चय का अर्थ यथार्थ सम्यग्दर्शन है। कल्पित व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन यथार्थ है नहीं। समझ में आया ?

निश्चय सम्यग्दर्शन हो, वहाँ व्यवहार उतना राग, देव-गुरु की श्रद्धा, भगवान की वाणी की बहुमानता, ऐसा विकल्प आता है। वह विकल्प है राग, उसको व्यवहार समकित कहना, वह उपचार से कहने में आता है। वास्तव में तो यह सम्यक् ही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन दो नहीं है, सम्यग्दर्शन का भाव तो यह एक ही निश्चय सम्यग्दर्शन एक है। कहो, समझ में आया ? १८९ हुई न ? १९५। देखो ! सम्यग्दृष्टि आचरण। सार-सार गाथा लिख ली है। क्योंकि बीच में तो ... थोड़ा-थोड़ा ख्याल में आ जाए कि क्या तारणस्वामी कहते हैं और वस्तु की स्थिति क्या है। अष्टपाहुड़ में दर्शनपाहुड़ में है, वह बात ली है।

**लिंग च जिन प्रोक्तं, त्रितय लिंगं जिनागमे।**
**उत्तम मध्यम जघन्यं च, क्रिया त्रेपण संजुतं॥१९५॥**
**उत्तम जिनरुपि च, मध्यमं च मतं श्रुती।**
**जघन्य तत्त्वं सार्धं च, अविरत सम्यग्दृष्टितं॥१९६॥**

देखो! अविरत सम्यग्दृष्टि इतने लिंग को मानते हैं और इतना अनुभव करते हैं, ऐसा कहते हैं।

**लिंगं त्रिविधिं प्रोक्तं, चतुर्थ लिंग न उच्यते।**
**जिनशासने प्रोक्तं च, सम्यग्दृष्टि विशेषतः॥१९७॥**

अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने लिया है, वह बात है। देखो! पहला शब्द लिया है, जिनागम में... पहली पंक्ति का दूसरा, वह पहले लिया है। जिनागम। पहला शब्द है न, पहली पंक्ति में। जिनशासन अन्त में आयेगा। जिनागम में वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर, सौ इन्द्र के पूजनीक, उनकी वाणी में। **'जिन प्रोक्तं' 'जिन प्र उक्तं'** जिनेन्द्र भगवान के (द्वारा) कहे गये। परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने कहा, **'त्रितयं लिंगं'**। लिंग तीन है। उत्तम लिंग, मध्यम लिंग और जघन्य लिंग। तीन लिंग कहा, चौथा है नहीं। समझ में आया?

यह यथायोग्य ... क्रिया से संयुक्त होता है। उत्तम लिंग जिनेन्द्र का स्वरूप नग्न दिगम्बर। आत्मज्ञान, आत्मध्यान। स्वरूप, हों! अकेला द्रव्यलिंग नहीं। यहाँ कहते हैं ऐसे सम्यग्दर्शन का अनुभव और स्वरूप का ध्यान और चारित्र, निर्विकारी आनन्द के झूले में झूले। पर्याय में निर्विकार आनन्द, द्रव्य-गुण तो ध्रुव त्रिकाल है। ऐसे उग्र आनन्द के झूले में झूले, उसका बाह्य लिंग तो एक जिनेन्द्र नग्न दिगम्बर होता है। समझ में आया? जिनरूपी। जिन को कैसे वस्त्र आदि नहीं होते, वैसे मुनि को वस्त्र का एक धागा भी नहीं होता। समझ में आया?

**'मध्यम च मति श्रुतं'** मध्यम लिंग शास्त्र में कहा हुआ श्रावक का लिंग है। समझ में आया? वह पाँचवे की बात है। छठ्ठा, पाँचवाँ और चौथा ऐसे लिया है। समझ में आया? छठ्ठा मुनि का लिंग। अन्तर में चारित्र है, आनन्द है। छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं।

सच्चे मुनि हैं तो क्षण में छठ्ठा, क्षण में सप्तम, क्षण में छठ्ठा और क्षण में सप्तम (आता है)। ऐसी मुनि की दशा होती है। वह नग्न हो जाता है। सहज जड़ की दशा हो जाती है, करना पड़ता नहीं। कर्ता नहीं है। एक लिंग भगवान के शास्त्र में मुनि का यह गिना है। दूसरा लिंग श्रावक का। शास्त्र में कहा, मध्यम श्रावक का लिंग है। कहो, समझ में आया? रत्नत्रय साधन की अपेक्षा से यह बात की है, भाई! ऐसे तो तीन लिंग वहाँ कहे हैं।... जहाँ निश्चय में उतारा है न, वहाँ तो ऐसा कहा, साधु का लिंग एक, एक क्षुल्लक आदि का लिंग, एक आर्जिका का। तीन लिंग बाह्य। यहाँ अन्तर ध्यान में उतारा है। छठ्ठा, पाँचवाँ और चौथा। समझ में आया?

छठ्ठा गुणस्थान.. महा मुनि सन्त वनवासी। जंगल में आत्मा का... सर्वज्ञ ने कहा ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त करके चारित्र की रमणता में झुलते हैं, उसका एक दिगम्बर जिन लिंग (था)। जिन लिंग कहो या दिगम्बर लिंग कहो, जिन दिगम्बर थे। जिन को कोई वस्त्र आदि था नहीं। वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा विराजते हैं नग्न। दूसरा श्रावक का लिंग है। पंचम गुणस्थानवाले। समझ में आया? यह अन्दर में भावलिंग की बात कहते हैं। पंचम गुणस्थान की दशा मध्यम लिंग है। छठ्ठे-सातवें की दशा उत्कृष्ट लिंग है। यहाँ अन्दर भावलिंग की बात है, हों! ओहो!

जघन्य लिंग '**तत्त्व सार्धं**'। तत्त्वबोधसहित। देखो! '**तत्त्व सार्धं**' है न? है या नहीं? '**उत्तम जिन रुचि च, मध्यम च मति श्रुतं। जघन्य तत्त्व सार्धं**'। सम्यग्दृष्टि नौ तत्त्व का यथार्थ बोध रखते हैं। समझ में आया? जड़ का जड़ भाव से, राग का राग भाव से, पुण्य को पुण्य भाव से, पाप को पाप भाव से, आत्मा को आत्मभाव से, आत्मा का आश्रय करके संवर, निर्जरा शुद्धि की वृद्धि हुई, वह संवर, निर्जरा भाव है। '**तत्त्व सार्धं**'। जिसका तत्त्वार्थ श्रद्धानं-तत्त्व की '**सार्धं**' श्रद्धा है, वह अविरत सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? अकेला तत्त्व नहीं है, तत्त्व नौ है। नौ तत्त्व के यथार्थ भानसहित सम्यग्दृष्टि हैं, अविरत सम्यग्दृष्टि हैं, अन्तर में अविरतपने का त्याग नहीं हुआ है। समझ में आया? फिर भी वह भगवान के शासन में जघन्य भावलिंग में गिनने में आया (है)। समझ में आया? ओहो!

'**लिंगं त्रिविधि प्रोक्तं**'। भगवान के आगम में, त्रिलोकनाथ के शासन में वीतराग

क्या है, भगवान परमात्मा। समझ में आया? प्रसिद्ध प्रसिद्ध दिमाग में आ गया। प्रसिद्ध सिद्ध है न? प्रसिद्ध सिद्ध। क्या है? परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ...अनादि से तीर्थंकर हैं। अनादि से होते आये हैं और अभी अनन्त काल होंगे। ऐसे भगवान के शासन में तीन प्रकार के लिंग कहे गये हैं। चौथा लिंग नहीं कहा गया है। बाह्य क्रियाकाण्ड है, राग को धर्म मानते हैं, पुण्य को धर्म मानते हैं, बाह्य का बाह्य लिंग है, वह चौथा लिंग है—ऐसा है नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बाह्य द्रव्यलिंग धारण किया नग्न मुनि का, श्रावक का बारह व्रत का विकल्प धारण किया हो। कोई चौथा लिंग शास्त्र में है ही नहीं। सम्यग्दर्शन का पहला लिंग, पंचम का दूसरा और छठ्ठे का तीसरा। ऐसे तीन लिंग वीतराग के आगम में कहे हैं। समझ में आया? इन तीन का भान नहीं और अकेली क्रियाकाण्ड, व्यवहार दया, दान, ब्रह्मचर्य व्रत, नियम का विकल्प और नग्नपना से बाह्य त्याग, वह चौथे लिंग में है, ऐसा है नहीं। वह लिंग ही नहीं है। समझ में आया? बाहर ... उतारा है, ये अन्तर में उतारा है। कोई ऐसे नहीं ले जाए कि हम श्रावक है, हम व्रत पालते हैं, इसलिए हम भी आते हैं। नहीं।

सम्यग्दृष्टि अविरत होने पर भी भावलिंग अन्तर अनुभव में है, वह जघन्य लिंग है। उससे आगे बढ़कर ध्यानादि में विशेष गति अन्तर में हुई है, दूसरे कषाय का नाश हुआ है। चौथे में अनन्तानुबन्धी कषाय का नाश हुआ है, मिथ्यात्व का नाश हुआ है। दूसरे अप्रत्याख्यान का नाश हुआ है। तीसरे में प्रत्याख्यान का नाश हुआ है। नाश तो हुआ, परन्तु अस्ति में स्वरूप की लीनता की उग्रता हुई है। समझ में आया? नाश हुआ, वह तो नास्ति कहा। परन्तु स्वरूप की स्थिरता की उग्रता में बहुत बढ़ गया है। वह तीन लिंग जिनशासन में गिनने में आये हैं।

'**चतुर्थ लिंग न उच्यते**' भगवान त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर के मार्ग में सम्यग्दृष्टि बिना, पंचम गुणस्थान बिना, छठ्ठे भावलिंग बिना किसी को मुनि अथवा श्रावक का लिंग कहने में आया है, ऐसा है नहीं। कठिन भाई! समझ में आया? यह श्रावकाचार का अर्थ चलता है। नहीं तो वह आगे ले जाए। यहाँ तो अविरत सम्यग्दृष्टि का पाठ है। आहाहा! समझ में आया? '**जिन शासने प्रोक्तं**' अधिक वचन दिया। उसमें कहा था, '**जिनागमे**'। '**जिनागमे**'। आगम में ऐसा कहा है। फिर से कहते हैं, '**जिन शासने प्रोक्तं**'। सर्वज्ञ

भगवान के शासन में तो इसे लिंग गिनने में आया है। समझ में आया? ओहो! हम व्रत तो पालते हैं न, ब्रह्मचर्य शरीर से पालते हैं न, चौविहार (रात्रिभोजन त्याग) तो ठीक करते हैं न, बाह्य से त्याग किया है तो हमारा तीन लिंग में से चौथा (लिंग) रहता है या नहीं? गाथा में से अर्थ (चलता) है।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्थान ही नहीं है, कितना क्या? इसलिए तो ये तीन बोल लिये हैं। '**लिंगं त्रिविधि प्रोक्तं, चतुर्थ लिंग न उच्यते**'। जिनागम में—जैनशासन में चौथा लिंग जगत में है ही नहीं। अकेला दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प और उसमें अपना धर्म मानता है, हम जैन में हैं (ऐसा मानते हैं)। नहीं। जैनशासन जिनागम में उसको लिंग ही नहीं कहा है। वह कुलिंग है। कुलिंग का अर्थ-देह का कुलिंग नहीं। देह में भले वस्त्र-पात्र छूट गये हो। समझ में आया? परन्तु विकल्प दया, दान, पंच महाव्रत के विकल्प में रुक गया और वही मेरा धर्म है, वहाँ रहा है, उसको यहाँ कुलिंगी कहते हैं। ओहोहो! कपड़े छोड़ दिये और नहीं छोड़े हैं तो कुलिंगी है, ऐसी यहाँ बात नहीं करते। कपड़े छूट गये हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो विकल्प से, समझ में आया? पंच महाव्रत, बारह व्रत (पालता हो), परन्तु आत्मा अन्तर विकल्प से भिन्न है, ऐसी दृष्टि अनुभव हुआ नहीं, सम्यक् हुआ नहीं (तो) पंचम नहीं, छठ्ठा नहीं है। उस चौथे लिंग को कुलिंग कहते हैं। लिंग में गिनने में, जैनशासन में गिनने में नहीं आया है। अन्य शासन में तो है नहीं, धर्म है ही नहीं। तीन काल तीन लोक में दूसरे में बात नहीं होती। चाहे नग्न साधु हो, जंगल में रहता हो, नग्न (होकर) जंगल में रहता हो। हमने देखे हैं बहुत। समझे? जंगल में नग्न (रहे)। क्या है? मूढ़ है।

जिनलिंग नग्न हो और फिर भी पंच महाव्रत और अठ्ठाईस मूलगुण का राग हो, तो भी लिंग नहीं है, ऐसा कहा है। निश्चय अधिकार कहते हैं न। निश्चय अधिकार की शैली .... है। समझ में आया? अठ्ठाईस मुलगुण पाले, नग्न रहे, कोपीन रखकर क्षुल्लक रहे,...

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं। वह चीज़ ही नहीं। वह चीज़ ही नहीं है, लिंग ही

नहीं है। समझ में आया? लंगोटी लगाकर क्षुल्लक हो गया, और क्या कहते हैं? ऐलक, ऐलक। ऐलक होते हैं न?

अपना आत्मा एक समय में अखण्डानन्द प्रभु, अनन्त गुणराशि ऐसा द्रव्य, ऐसा शक्तियाँ—ऐसी अन्तर में प्रतीत, अनुभव सम्यग्दर्शन बिना ऐसे लिंग को जैनशासन में कोई लिंग में गिनने में नहीं आया है। लिंग कहो या सत्य कहो। असत्य में, कुलिंग में गिनने में आया है। आहाहा! लोंच कराते हो। छह महीने में परन्तु अन्तर राग, पुण्य, देह की क्रिया से मुझे लाभ होगा, हम दूसरे से तो निवृत्त हुये हैं न? नहीं? सेठ! दुकान में धन्धा करते थे, डालचन्दजी, पुत्र से निवृत्त हुआ हूँ, ऐसे तो मैं विशेष हूँ, ऐसा मान ले.. समझ में आया? भैया! नहीं, वह नहीं, वह नहीं। वह लिंग में ही नहीं है। आहाहा! कड़क बात लगती है, हों! तारणस्वामी की। बाह्य सम्प्रदायवालों को इसके साथ मेल खाये, ऐसा नहीं है। पण्डित तो ना ही कहते हैं, अभी के पढ़े हुए। अरे..! सुन न।

ये तो निश्चय की यथार्थ दृष्टि सहित का लिंग, लिंग। व्यवहार हो तो भले हो। अट्ठाईस मूलगुण आदि, बारह व्रत का विकल्प आदि हो, उसको कौन ना कहता है? परन्तु वह यथार्थ लिंग नहीं है, सत्य लिंग तो यही है। आहा! समझ में आया? ध्यान रखना। गाथा का ऐसा अर्थ हुआ है।... यहाँ उतरता है या नहीं?

चौथा लिंग नहीं कहा गया है। विशेष करके जिनशासन में सम्यग्दृष्टि का कहा गया है। देखो! सम्यग्दृष्टि का विशेष करके यही... है न? '**सम्यग्दृष्टि विशेषतः**' सम्यग्दृष्टि विशेषपने वही लिंग शास्त्र कहने में आया है। भगवान के शासन में, त्रिलोकनाथ के शासन में, गणधर के शासन में। ओहो!... तुझे भाव नहीं है, तू है ही नहीं, कोई लिंग में नहीं है। सेठ! कड़क है यहाँ। तारणस्वामी कड़क हुए हैं जंगल में। यथार्थ कहा है, वह यथार्थ कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा ही कहते हैं, नहीं। अकेला व्यवहार क्रियाकाण्ड करनेवाला तुम धर्म में गिनने में आता है, बिल्कुल नहीं। मूढ़, अज्ञानी मूढ़ है। ऐसा कहा है। अज्ञानी मूढ़। पण्डित लोग तो ऐसा सुनकर तो ऐसा ही कहेंगे कि, ये निश्चयाभासी हैं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो व्यवहार को बताया है। निश्चय है तो व्यवहार बताया है।

समझ में आया ? यह निश्चय से बात ली है। चौथे, पाँचवें, छठ्ठे को ही लिंग कहते हैं। विकल्प आदि में लिंग नहीं है। व्यवहार लिंग हो, निश्चय हो तो। परन्तु निश्चय बिना का अकेला बाह्य भेष धारण करे, ऐसा श्रावक का, मुनि का, क्षुल्लक का, ऐलक का, नग्नपना (धारण करे), भगवान के शासन में जिनागम में तारणस्वामी कहते हैं, हमारे कथन में, हमारे जैनशासन का कथन है, हमारे घर का नहीं। हमारे सभी शास्त्र में भी चौथा लिंग जिनशासन में नहीं है तो हम भी चौथा लिंग कहते नहीं। कहो, पण्डितजी ! यह तो शब्द का अर्थ होता है। समझ में आया ? ... समझे ? ... १९८ आयी। ...

**जघन्य अव्रतं नामं, जिन उक्तं जिनागमं।**
**सार्ध ज्ञानमयं शुद्धं, क्रिया दस अष्ट संजुतं ॥१९८॥**

देखो भाषा ! जिन.. जिन.. जिन.. जिन.. (अज्ञानी कहता है), भगवान भगवान का जाने। हम हमारा। जघन्य लिंग का पात्र अविरत सम्यग्दृष्टि है। जो '**जिन उक्तं**'। जिनेन्द्र ने कहा हुआ, जिनागम अनुसार।'**सार्थं**' है न ?'**ज्ञानमयं सुद्धं**'। ज्ञानमय शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है। ज्ञानमय शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है। समझ में आया ? वह अठारह क्रिया सहित होता है। नाम पीछे है। समझ में आया ? उसकी १८ क्रिया होती है। चौथे गुणस्थान से १८ क्रिया होती है। पीछे व्यवहार लिया। देखो ! कैसी कथन की पद्धति है ! निश्चय लिया। चौथा लिंग नहीं है। चौथा गुणस्थान, पंचम गुणस्थान.. तीन लिंग। और तीन लिंग में '**जिन उक्तं**' में यह क्रिया होती है। दस अष्ट – १८। १८ में कुछ शुद्ध है, कुछ विकल्प की बात है। ऐसा निश्चय हो तो उसको व्यवहार कहने में आता है। निश्चय सहित का व्यवहार लिया है। समझ में आया ? उसकी बात विशेष लेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

(५)

आसोज शुक्ल ११, शनिवार, १७-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-१९९, २००, २०८, २०९, २१०, २१५ से २२०, प्रवचन - २२

ये श्रावकाचार तारणस्वामी रचित है। इसमें ५३ क्रिया में सम्यग्दृष्टि को १८ क्रिया होती है, उसका वर्णन किया है। १९९ और २०० श्लोक।

**सम्यक्त्वं शुद्ध धर्मस्य, मूलंगुणं उच्यते।**
**दानं चत्वारि पात्रं च, सार्धं ज्ञानमयं ध्रुवं॥१९९॥**
**दर्शनज्ञान चारित्रै, विशेषितं गुण पूजयं।**
**अनस्तमितं शुद्ध भावस्य, फासू जल जिनागमं॥२००॥**

क्या कहते हैं? पहले तो शुद्ध आत्मधर्म की श्रद्धा रखनेवाले जीव को अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव को '**सम्यक्त्वं शुद्ध धर्मस्य**'। अपना आत्मा पूर्ण परमात्म शक्ति सम्पन्न और राग, विकल्प और पुण्य-पाप से भिन्न ऐसे आत्मा की अन्तर प्रतीति, अनुभव होना वह प्रथम सम्यग्दर्शन है। '**सम्यक्त्वं शुद्ध धर्मस्य, मूलंगुणं**' वह तो निश्चय की बात कही। पहले भी निश्चय की क्रिया। ध्यानादि की क्रिया थी। समझ में आया? ध्यानादि की क्रिया है, वह निश्चय है अन्दर में। ऐसा निश्चय हो, तब ऐसा व्यवहार होता है। वह बात कहते हैं।

जिसको सम्यग्दर्शन निश्चय नहीं है, उसको तो व्यवहार क्रिया है, वह व्यवहार कहने में आता नहीं। समझ में आया? ऊपर-ऊपर से पाले कि देखो! १८ क्रिया कही है। परन्तु वह १८ क्रिया तो व्यवहार है, विकल्प है। किसको? जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन, शुद्ध ज्ञायकमूर्ति जैसा सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा कहा, ऐसा अनुभव में प्रतीत हुई, उसका

व्यवहार कैसा है, उसकी व्याख्या होती है। समझ में आया? अकेला १८ गुण वह समकित की क्रिया और १८ गुण पालते हैं, इसलिए हमें समकित की क्रिया हो गयी, ऐसा नहीं है। समझ में आया? पण्डितजी!

पहले सम्यग्दर्शन निश्चय अविरत सम्यग्दर्शन में अपना आत्मा पर से भिन्न और पर का कर्ता और पर से मेरे में होता है, ऐसा कुछ नहीं है अन्दर। ऐसी पूर्ण शुद्ध स्वभाव की अन्दर अनुभव में भान होकर श्रद्धा का होना, उसका नाम शुद्ध सम्यग्दर्शन है। '**शुद्ध धर्मस्य**' समकित को जीवों को, ऐसे जीव को '**मूलंगुणं उच्यते**' आठ मूलगुण पालना होता है। समझ में आया? पाँच उदम्बर फल आते हैं न? पाँच उदम्बर फल का त्याग। मदिरा, माँस और मधु का सेवन नहीं। है तो वह विकल्प, शुभराग। परन्तु उस भूमिका में ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। आठ मूलगुण पालने का भाव सम्यग्दृष्टि को होता है। माँस खाये या मधु खाये.. समझ में आया? कि दारू पीये, या पाँच उदुम्बर फल तो अकेले त्रस जीव की राशि है, ऐसी खुराक सम्यग्दृष्टि को होती नहीं। समझ में आया?

'**दानं चत्वारि**' चार प्रकार का दान। आहार, औषध, अभय और ज्ञान। चार प्रकार का दान पात्रों को देते हैं। समझ में आया? जघन्य पात्र सम्यग्दृष्टि, मध्यम पात्र पंचम गुणस्थान, उत्कृष्ठ पात्र छठ्ठा (गुणस्थानवाले) मुनि। ऐसा चार प्रकार का दान-आहार, अभय, औषध आदि '**पात्रं च**' परन्तु वह सम्यग्दृष्टि पात्र है, उसको देता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। समझ में आया? '**सार्धं ज्ञानमयं ध्रुवं**' लिया है। भाई! उसको साथ में विवेक होता है। बहुत सूक्ष्म बात है, देखो! पहले तो '**सम्यक्त्वं शुद्ध धर्मस्य**'। सम्यक् दृष्टि जिसको हुई है, शुद्धता आत्मा का भान में हुआ है, ऐसे सम्यग्दृष्टि को '**मूलंगुणं उच्यते**'। उसको आठ मूलगुण का विकल्प व्यवहार आता है। सम्यग्दर्शन का भान नहीं, अनुभव नहीं और मात्र आठ मूलगुण का विकल्प हो, उसको व्यवहार कहने में आता नहीं। डालचन्दजी! पहले निश्चय लिया है, बाद में व्यवहार लिया है। देखो! वर्तमान में गड़बड़ बहुत चलती है। पहले व्यवहार चाहिए, व्यवहार करते-करते निश्चय होता है।

**मुमुक्षु :** उल्टा चलते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उल्टा चलते हैं? बात सच्ची है।

इसलिए ताणस्वामी ने पहले निश्चय लिया। यहाँ तो अपने बीच में गाथा छोड़ दी है, परन्तु पहले ध्यान का लिया न? अन्दर आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में परिपूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड, विकल्प नाम दया, दान के विकल्प से भिन्न, शरीर से भिन्न परिपूर्ण स्वभाव, ऐसा अन्तर में परिपूर्ण परमात्मशक्ति का पिण्ड मैं हूँ, ऐसा अनुभव सम्यग्दर्शन में आना, उसका नाम अनुभव का वेदन सम्यग्दर्शन कहने में आता है। सम्यग्दृष्टि अन्तर्मुख में आनन्द का ध्यान करते हैं। वह निश्चय लिया। वह निश्चय हो, तब ऐसी अठारह क्रिया का व्यवहार सम्यग्दृष्टि को होता है। सम्यग्दर्शन नहीं हो, निश्चय नहीं हो और अकेला अठारह मूलगुण की क्रिया हो तो उसका व्यवहार भी कहने में आता नहीं। समझ में आया? एक न्याय बदले तो पूरा तत्त्व पलट जाता है। अठारह मूलगुण पालते हैं, हम समकिती है, ऐसा नहीं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। निश्चय सम्यग्दर्शन वस्तु का भानपूर्वक। देखो! इसलिए '**सम्यक्त्व शुद्ध धर्मस्य**' पहला शब्द लिया है। १९९। '**मूलंगुणं**' उसका आठ प्रकार का मूलगुण (होता है)। पाँच प्रकार के फल का त्याग, मद्य, माँस और दारू का त्याग। ऐसा विकल्प। विकल्प आता है। परचीज़ अपने में घुस नहीं गयी कि मैं छोड़ दूँ। समझ में आया? ऐसे विकल्प में आठ चीज़ें (नहीं) लेने का भाव निश्चय सम्यग्दृष्टि को ऐसा व्यवहार आता है। समझ में आया? एक शब्द में न्याय बदले तो पूरा तत्त्व पलट जाता है।

'**दानं चत्वारि पात्रं**' निश्चय सम्यग्दृष्टि है, धर्मी है, अपना आत्मा पूर्णानन्द पवित्र (है), सर्वज्ञ ने जैसा आत्मा कहा; अन्य अज्ञानी ने कहा ऐसा नहीं। वीतराग ने कहा ऐसा अनन्त गुण की राशि ऐसा आत्मा एक परिपूर्ण (है), ऐसा भान हुआ, वह '**दानं चत्वारि पात्रं**' चार प्रकार का दान देता है। वह विकल्प है, शुभराग है। दान है, वह शुभराग है; धर्म नहीं, संवर-निर्जरा नहीं। समझ में आया? '**पात्रं च**' ऐसा शब्द बाद में लिया है। चार प्रकार का दान—आहार, औषध, अभय और ज्ञानदान। ये चार प्रकार का दान दूसरे को दे। आहाहर का (देने का) विकल्प उठता है, परन्तु किसको? पात्र को। पात्र शब्द पड़ा है न? सम्यग्दृष्टि, सामने पात्र हो, चौथा गुणस्थानवाला हो, पंचम गुणस्थानवाला हो, छठ्ठा

गुणस्थानवाला हो, वह जघन्य, मध्यम पात्र है, उसको सम्यग्दृष्टि-निश्चय सम्यग्दृष्टि चार प्रकार का आहार देने का भाव विकल्प, ऐसो व्यवहार ज्ञानी को होता है। समझ में आया?

'**दानं चत्वारि पात्रं च**' क्यों? कि '**सार्धं ज्ञानमयं ध्रुवं**'। है न? उस दान को '**सार्धं ज्ञानमयं ध्रुवं**'। निश्चय ज्ञानमय भाव से विवेकसहित देता है। भान है। सामने मिथ्यादृष्टि है और बाह्य क्रिया ऐसी करता है, दया, दान आदि, उस क्रियावन्त को ज्ञानी पात्र नहीं मानते। समझ में आया? सेठ! जिम्मेदारी बहुत है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ तो देता है। हो तो ऐसा होता है, उसकी बात है। निश्चय सम्यग्दर्शन अपने में हुआ, उसको व्यवहार ऐसा होता है कि जो व्यवहार में आठ मूलगुण का पालन का विकल्प है और पात्र को चार प्रकार का आहार देने का विकल्प-शुभभाव होता है, पात्र को आहार देना, वह संवर-निर्जरा की क्रिया नहीं है। समझ में आया? आहार दे सकते हैं, ले सकते हैं—ऐसा नहीं। क्योंकि वह तो परचीज़ जड़ है। जड़ का जाना-आना, वह अपने अधिकार की बात नहीं। परन्तु उस समय सम्यग्दृष्टि को पात्र को देने का भक्ति सहित ऐसा भाव शुभ आता है। उसको निश्चयपूर्वक व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया? '**सार्धं ज्ञानमयं**' ज्ञान के विवेक सहित। कौन पात्र है, कौन अपात्र है, कौन कुपात्र है, उसका भी ज्ञानी सम्यग्दृष्टि को विवेक होना चाहिए। विवेक बिना उसका व्यवहारदान भी सच्चा होता नहीं। कहो, प्रेमचन्दजी! समझ में आया? पीछे।

'**दर्शनज्ञान चारित्रं, विशेषितं गुण पूजयं**'। सम्यग्दृष्टि जीव निश्चय सम्यग्दर्शनवान... २०० गाथा है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र से विशिष्ट जो कोई पुरुष धर्मात्मा है, अपने से अधिक अथवा दर्शन, ज्ञान, चारित्र में खास विशिष्ट है, ऐसे धर्मात्मा की सम्यग्दृष्टि पूजना करते हैं, सेवा करते हैं। समझ में आया? है शुभराग। परन्तु ऐसा व्यवहार उसको होता है। यदि ऐसा भक्ति आदि का भाव न हो, अभक्ति हो तो दृष्टि सच्ची रहती नहीं। समझ में आया? '**दर्शनज्ञान चारित्रं**' वह सम्यग्दर्शन, चारित्र में विवेकित होता है। ऐसा लिखा है। नहीं तो ऐसा अर्थ है कि '**दर्शनज्ञान चारित्रं, विशेषितं गुण पूजयं**'। जितनी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में विशेषता है, ऐसे धर्मात्मा का पूजन करते हैं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गुण सहित है, लो न। गुण सहित हो अथवा ऐसे गुण को पूजनीक मानते हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र। सम्यक् निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय चारित्रवन्त हो, ऐसा गुण सहित हो, उसे पूजनीक मानते हैं। उसकी पूजा, भक्ति करते हैं। सम्यग्दृष्टि का शुभराग का व्यवहार ऐसा आये बिना रहता नहीं। सम्यग्दर्शन बिना यदि ऐसा कोई अकेला करे (तो) मात्र पुण्यबन्ध होता है। स्वभाव का भानपूर्वक ऐसा हो तो अपनी दृष्टि जितनी निर्मल है, उतनी तो शुद्धता अन्दर वर्तती है। संवर-निर्जरा होती है। और जितना शुभभाव है, उससे पुण्यबन्ध का आस्रव होता है। समझ में आया ? कितने बोल हुये ? पन्द्रह हुए।

'**अनस्तमितं**'। रात्रि को आहार नहीं करना। रात्रि के बाद भोजन, आहार आदि नहीं (करना)। समझ में आया ? यथाशक्ति उसको रात्रिभोजन का त्याग होता है। '**शुद्ध भावस्य**'। पाठ ऐसा लिया है। समझ में आया ? निर्मल भाव से, हठ से नहीं। शुद्धभाव सम्यग्दर्शन, ज्ञान की निर्मलता का भानसहित शुद्धभाव (से देता है)। जहाँ-तहाँ शुद्धभाव.. शुद्धभाव... शुद्धभाव पहले लेते हैं। इसके बिना तेरा व्यवहार विकल्प, वह व्यवहार है नहीं। बहुत कठिन बात। डालचन्दजी ने पहले सुना नहीं हो तो उसको ऐसा लगे कि आहा! ये क्या है ? ऐसा तारणस्वामी कहते हैं। समझ में आया ? वह तो वीतराग मार्ग ऐसा है, ऐसा ही कहते हैं, घर का कुछ नहीं है। समझ में आया ?

जिनागम में सर्वज्ञ परमात्मा सन्तों ने जो बात अनादि से चली आयी है। निश्चय सहित व्यवहार, यह निश्चयसहित व्यवहार सम्यग्दृष्टि का कैसा है, उसका वर्णन है। निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है और अकेले व्यवहार आचार की क्रिया करे तो शुभभाव होता है, पुण्यबन्ध होता है। धर्म-बर्म नहीं। और ऐसा करते, करते, करते कभी सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा भी नहीं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करते-करते राग होता है, वह तो राग की क्रिया है।

**मुमुक्षु :** सम्यग्दर्शन नहीं होता ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता, तीन काल-तीन लोक में। वह तो पहले से कहते आये हैं। अन्तर स्वभाव चिदानन्द अकेला भगवान चैतन्यसूर्य पूर्णानन्द समस्वभावी वीतरागभाव अपना, उसका अनुभव में प्रतीत होकर सम्यग्दर्शन होता है। इस क्रियाकाण्ड से सम्यग्दर्शन तीन काल-तीन लोक में होता नहीं। समझ में आया? ओहो..! परन्तु ऐसे सम्यग्दर्शन की भूमिका में जब तक पूर्ण वीतराग नहीं हो, तो उस गुणस्थान में ऐसा १८ क्रिया का शुभभाव आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? यह सब समझना पड़ेगा। सेठिया होकर आगे बैठे, समझने की दरकार करे नहीं। फिर समझे बिना क्या लाभ होगा? बराबर है सेठ?

रत्नत्रयधारी महात्माओं की पूजा करना। देखो! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। सम्यग्दृष्टि जीव हो, सम्यग्ज्ञानी हो, उसकी सेवा और सम्यक्चारित्रवन्त सम्यग्दर्शन, ज्ञान सहित हो, उसकी भी पूजा (करना)। वह है शुभभाव। है शुभ विकल्प। परन्तु वह भाव सम्यग्दृष्टि निश्चयवन्त को ऐसा भाव व्यवहार से आये बिना रहता नहीं। ऐसा व्यवहार का विवेक बताया है। समझे? मिथ्यादृष्टि का विवेक नहीं करते, ऐसा कहते हैं। उसमें नकार (नास्ति) लो तो। आगे थोड़ा आयेगा। सब गाथा नहीं ली है, थोड़ी-थोड़ी ली है, सार-सार। नहीं तो मिथ्यादृष्टि है, कुपात्र है, जिसकी श्रद्धा सर्वज्ञ वीतराग जिनागम के अनुसार आत्मा के अनुभव की दृष्टि है नहीं और अकेला क्रियाकाण्ड है, वह तो कुपात्र है। समझ में आया? उसकी बात यहाँ है नहीं।

'**फासू जल**' प्रासुक जल। अचेत जल। समझ में आया। छना पानी, इतना लिया न। प्रासुक जल—छना पानी। क्योंकि ... यहाँ चौथे गुणस्थानवाला। प्रासुक जल का अर्थ ही उतना किया है कि छना पानी। समझ में आया? गाला हुआ पानी। प्रासुक क्यों लिया है? कि उसमें त्रस न आवे। गलणा को क्या कहते हैं? कपड़ा। छानने का कपड़ा होता है न? उसमें त्रस जीव आये नहीं। त्रस का अभाव बताने को प्रासुक जल लिया है। नहीं तो पानी तो सचेत है। पानी के एक बिन्दु में असंख्य जीव हैं। चाहे तो सात गलने से गले या कुएँ में से निकला हुआ पानी हो या चाहे तो ऊपर से आया हुआ पानी हो, एक बिन्दु में असंख्य एकेन्द्रिय जीव है। समझ में आया? वह अप्रासुक ही है। उसको जब गर्म करके ले तो प्रासुक हो जाए। गर्म करने की यहाँ बात नहीं है।

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि प्रासुक जल (लेते हैं)। त्रस को उसमें न आने दे, छना पानी काम में लेता है, ऐसा उसका १७वाँ बोल कहने में आया है। है तो शुभ विकल्प। पानी छानने आदि की क्रिया अपनी नहीं है। आत्मा कर सकता है, छानने की क्रिया जड़ की आत्मा नहीं कर सकता। समझ में आया? ओहोहो! और जिनागम। समता करना। उसमें थोड़ा शीतलप्रसाद ने अन्दर लिखा है न? समताभाव के लिये जिनागम का मनन करना। ऐसा लिया है। कौंस में अन्दर में ले लिया। समताभाव ४३ क्रिया में से... शान्ति अकषाय... थोड़ा भूमिका अनुसार है, ऐसा रखना अथवा कषाय मन्द रखना और जिनागम का मनन करना। देखो! जिनागम सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे आगम, उसका मनन करना। अज्ञानी का कहा हुआ, अपनी कल्पना से बनाया हुआ शास्त्र का मनन नहीं। सम्यग्दृष्टि का कोई शास्त्र हो, उसका मनन होता है। अज्ञानी के शास्त्र का मनन होता नहीं। समझ में आया? चार में से कोई भी ले, लेकिन सच्चा मानकर अकेले जिनागम का मनन करता है। दूसरे को झूठा मानकर वांचन, विचार आदि करे, वह अलग बात है। समझ में आया? लो, १८ क्रिया निश्चय सहित हुई।

**यस्य सम्यकत हीनस्य, उग्र तव व्रत संयमं।**
**सर्व क्रिया अकार्या च, मूल बिना वृक्षं यथा॥२०८॥**

क्या कहते हैं? जो सम्यग्दर्शनरहित है। अपना आत्मा क्या चीज़ है, उसका अनुभव अन्तर में प्रतीत का भान है नहीं, उसका कठिन तप करना, उग्र तप। छह-छह महीने का उपवास करे, जंगल में रहे, लकड़ी की भाँति शरीर सूख जाए, बिल्कुल रस ले नहीं। उग्र तप शब्द पड़ा है न? उग्र अर्थात् दूध, शक्कर, गुड़, पकवान नहीं, अकेला पानी और ममरा... ममरा को क्या कहते हैं? चावल का (बनता है)। मुरमुरा चावल का बनता है। ऐसा सादा बोराक ले और चार-चार, छह-छह महीने, आठ-आठ महीने का उपवास करे। उग्र तप करे। व्रत पाले। दया, दान, ब्रह्मचर्य पाले, दया पाले, सत्य बोले और संयम इन्द्रिय का दमन, धारणा हो, इत्यादि व्यवहार आचरण अकार्य-व्यर्थ है। है भैया?

'**सम्यकत हीनस्य**'। जिसे, जिनागम सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा, ऐसा आत्मा का प्रतीत, सम्यक् अनुभव नहीं, ऐसे जीव को उग्र तप, उग्र व्रत और उग्र इन्द्रिय दमन.. सब उसके साथ ले लेना। व्रत और इन्द्रिय दमन। इन्द्रिय का इतना दमन करे। '**सर्व क्रिया**

**अकार्या**'। सर्व क्रिया उसको आत्मा के लाभ के लिये थोड़ी भी (कार्यकारी) नहीं है। '**अकार्या च**'। (अज्ञानी कहते हैं), क्रिया करते-करते होता है। यहाँ तो '**सर्व क्रिया अकार्या**' कहा। सेठी! पण्डित लोग इसके सामने चिल्लाते हैं। हम कहते हैं उसके सामने चिल्लाते हैं। यह नहीं। ऐसी क्रिया करते, करते, करते, करते सम्यग्दर्शन (हो जाएगा)। हिन्दुस्तान में यहाँ की बात सुनने के जिज्ञासु बहुत हो गये हैं कि, यह क्या कहते हैं? पण्डितों में खलबली मच गयी।

कहते हैं, इत्यादि व्रत पालन, संयम अर्थात् इन्द्रिय का दमन इत्यादि सर्व व्यवहार आचरण, पुण्य की क्रिया '**अकार्या**' व्यर्थ है। मोक्षमार्ग में नहीं है। उससे कुछ आत्मा का संवर-निर्जरा का लाभ, (ऐसा है नहीं)। किंचित् लाभ नहीं है। निर्णय करना पड़ेगा, डालचन्दजी! अभी तक बहुत चलाया है। निर्णय करना पड़ेगा कि नहीं?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिथ्यादृष्टि से प्रेरणा दूसरे को कैसे मिले? धूल में मिले। कोई मिथ्यादृष्टि है, उसकी परिणति-क्रिया से पर को कैसे (लाभ) मिले? समझ में आया?

यहाँ तो तारणस्वामी कहते हैं, '**मूल बिना वृक्षं यथा**'। मूल नास्ति.. कहते हैं न? क्या कहते हैं? कूतो शाखा। वह कहते हैं, देखो! मूल के बिना वृक्ष नहीं हो सकता। जहाँ सम्यग्दर्शन निर्विकल्प चैतन्य क्या है, अपने आत्मा का स्वरूप भगवान, जिनागम कैसा कहते हैं, ऐसी अन्तर में प्रतीत, अनुभव है नहीं, तो वृक्ष के बिना शाखा होती नहीं। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन बिना वह सर्व क्रिया-शाखा सच्ची है नहीं। सब झूठ है। कितना उग्र तप करे, हाँ! ये तो भाषा इतनी (है)। उग्र तप की व्याख्या लम्बी है। एक उग्र तप में अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, सज्झाय, ध्यान व्युत्सर्ग। बारह प्रकार में उसकी व्याख्या लम्बी है। लेकिन यहाँ अपने तो थोड़ा-थोड़ा कहना है। समझ में आया?

उग्र तप में अनशन छह-छह महीने (करे)। अनशन, ऊनोदरी। एक ग्रास ले। दूसरा एक भी ग्रास नहीं ले। बार-बार महीने सदा करे। वृत्तिसंक्षेप। पानी एक घर से ले, दो घर से लेना, बाद में नहीं लेना, ऐसा लेना। इन्द्रियों का दमन। वृत्ति-वृत्ति संक्षेप करे।

और रसपरित्याग। दूध, दही, शक्कर बिल्कुल खाये नहीं। सब रस छोड़ दे। उसका नाम उग्र तप की व्याख्या है। अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश। आसन ऐसा लगा दे, छह महीने तक चलायमान नहीं हो। उसमें क्या हुआ? मात्र राग की मन्दता हो तो पुण्यबन्ध हो जाएगा। धर्म-बर्म किंचित् उसको है नहीं। समझ में आया?

इन्द्रिय का दमन, प्रायश्चित्त। ... सब विकल्प, शुभराग है। धर्म-बर्म नहीं। विनय करे। देव-गुरु-शास्त्र का बहुत विनय, बहुत विनय करे। बहुत विनय करे तो शुभराग है। सम्यग्दर्शन बिना सब व्यर्थ है। समझ में आया? विनय, वैयावृत्य। देव-गुरु-शास्त्र की वैयावृत्य करे। राग है, सम्यग्दर्शन बिना तेरी क्रिया सब व्यर्थ है। स्वाध्याय। शास्त्र का स्वाध्याय, शास्त्र का स्वाध्याय। पूरा दिन दस-दस, बारह-बारह घण्टे वांचन (करे)। तेरी स्वाध्याय क्रिया सब व्यर्थ है। उग्र तप में इतना शब्द पड़ा है। ये तो संक्षिप्त शब्द है। लम्बा करे तो पार नहीं आवे। थोड़ा-थोड़ा सार-सार (लेते हैं)। सेठ ने कहा न, थोड़ा उतारना है, आठ व्याख्यान। समझ में आया? विनय, वैयावृत्य, सज्झाय, ध्यान। ध्यान करो। ध्यान किसका? वस्तु का भान बिना तेरा ध्यान वृथा है। कायोत्सर्ग। इतनी उग्र तप की व्याख्या की।

व्रत में भी पंच महाव्रत। बड़ा जोरदार व्रत। और संयम में पाँच इन्द्रिय का दमन। '**सर्व क्रिया अकार्या च, मूल बिना वृक्षं यथा**'। अकार्य, जिसमें अपना कार्य सिद्ध होता नहीं। जैसे वृक्ष का मूल नहीं है तो उसकी शाखा आदि होते नहीं। कहो, बराबर है? २०९। लिखा है, तो लिखा है, उसकी बात चलती है। २०९।

**सम्यकतं यस्य मूलस्य, साहा व्रत नंतनंताइ।**
**अपरे पि गुण होंति, सम्यकते हृदयेस्य॥२०९॥**

'**सम्यकते यस्य मूलस्य**'। जिसके सम्यग्दर्शन रूपी जड़ है। मूल अर्थात् जड़। जिसके आत्मा में सम्यग्दर्शनरूपी जड़ है। देखो! उसमें ना कही थी न? मूलं बिना... उसको शाखाएँ, ... नहीं हो सकती हैं। उसको क्रमशः शान्ति की ज्वारी होती है। व्रत का विकल्प भी होता है। यथार्थ तप अन्दर आत्मा में आनन्द की उग्रता होती है।

'**अपरे पि गुण होंति**' और भी बहुत गुण होते हैं। सम्यग्दर्शन है, वहाँ बहुत गुण होते हैं। सम्यग्दर्शन बिना ऐसी क्रिया करे तो भी आत्मा को कुछ कार्यकारी है नहीं। '**सम्यक्त्व**

**हृदयेस्य**'। देखो! हृदय शब्द का अर्थ अन्तरंग आत्मा में। पूर्णानन्द प्रभु, उसका अनुभव में प्रतीत हुई-सम्यग्दर्शन, उसको अनन्त-अनन्त अनेक गुण प्राप्त होते हैं। सर्व क्रिया वृथा कहा है न सामने? यहाँ अनन्त गुण वृद्धि पाते हैं। सामने-सामने लिया है। सर्व क्रिया अकार्य। यहाँ सर्व गुणों की अनन्त-अनन्त बढ़वारी होती है। ऐसा लिया है। सामने-सामने प्रतिपक्ष लिया है। समझ में आया? क्या प्रतिपक्ष लिया? क्या समझे?

सम्यक् आत्मा का वीतराग सर्वज्ञ जिनागम और परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, उसकी दृष्टि का भान नहीं, उसके बिना तेरी सर्व क्रिया वृथा है। उसके सामने सम्यग्दर्शन है तो सब अनन्त गुण की बढ़वारी, अनन्त गुण उसके सफल हो जाते हैं। समझ में आया? '**सम्यकते हृदयेस्य**'। २१०।

**सम्यकत विना जीव जानै श्रुन्येत्र बहुभेदं।**
**अन्ये यं व्रतचरणं, मिथ्या तप वाटिका जालं॥२१०॥**

वस्तुस्थिति ऐसी है। जिनागम सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा कहा कि, सम्यग्दर्शन के बिना जीव ग्यारह अंग, नौ पूर्व तक बहुत प्रकार से शास्त्र को जाने। दूसरा ज्ञान तो नहीं, परन्तु शास्त्र ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ ले। मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

'**अनेय व्रत चरणं**' अन्य जो कोई बहुत व्रतादि आचरण (करे)। बहुत आचरण करे। सब '**मिथ्या तप वाटिका**'। मिथ्या तप का निवासरूपी जाल है। जाल है, बन्ध होगा, बन्ध में पड़ता है। '**मिथ्या तप वाटिका जालं**'। है? २१० हुई। २१५।

**सम्यकते यस्य सूयन्ते, श्रुतज्ञानमं विचक्षणं।**
**ज्ञानेन ज्ञान उत्पाद्यं, लोकालोकस्य पस्यते॥२१५॥**

देखो! जिस आत्मा के भीतर सम्यग्दर्शन और विचक्षण श्रुतज्ञान। देखो! विचक्षण श्रुतज्ञान अर्थात् यथार्थ श्रुतज्ञान। उसका अर्थ यथार्थ किया। सच्चा श्रुतज्ञान, भावश्रुतज्ञान। आत्मा के भीतर निश्चय भाव सम्यग्दर्शन और भावश्रुतज्ञान है, '**सूयन्ते**' अर्थात् परिणमन कर रहा है। है न? '**सूयन्ते**'। अन्तर आत्मा ज्ञान, दर्शन, वस्तु दर्शन और ज्ञान से निश्चय यथार्थ परिणमन कर रहा है, तो कहते हैं कि '**ज्ञानेन ज्ञान उत्पाद्यं**'। भावश्रुतज्ञान के द्वारा ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि जिससे लोकालोक दिखलायी पड़ता है। क्या कहते हैं? कि

भावश्रुतज्ञान से केवलज्ञान होता है। कोई विकल्प से या दया, दान या पंच महाव्रत से, अट्ठाईस मूलगुण से केवलज्ञान होता नहीं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं होगा, उससे भी नहीं। यहाँ ये लिया है। कितने बोल लिये हैं, देखो! '**सम्यक्त्व यस्य सूयन्ते**' जिसकी अन्तर्दृष्टि, भगवान सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा आत्मा। अज्ञानी कल्पित लोगों ने कहा, ऐसा नहीं, उसको यथार्थ दृष्टि होती नहीं। भगवान ने कहा ऐसा '**सम्यक्त्व यस्य सूयंते**' अन्तर दर्शन की प्रतीति हुई है और परिणमन हुआ है, समझ में आया?

'**श्रुतज्ञानमं विचक्षणं**'। यथार्थ। विचक्षण अर्थात् ज्ञान की यथार्थता अन्तर में भावश्रुत की प्रगट हुई है। सम्यग्दर्शन सहित। सम्यग्दर्शन बिना भावश्रुतज्ञान होता नहीं। और भावश्रुतज्ञान द्वारा... देखो! तारणस्वामी क्या कहते हैं? '**ज्ञानेन ज्ञान उत्पाद्यं**'। भावश्रुत निर्विकल्प ज्ञान से ही आगे केवलज्ञान प्राप्त करता है। दया, दान, व्रत, बीच में आता है। अट्ठाईस मूलगुण आदि व्रत के विकल्प से कोई केवलज्ञान प्राप्त करता है, ऐसा स्वरूप में है नहीं। समझ में आया? निश्चय श्रुतज्ञान मोक्षमार्ग से केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है। व्यवहार बीच में आता है। अठारह क्रिया आदि का विकल्प अथवा मुनि के योग्य अट्ठाईस मूलगुण, श्रावक के योग्य बारह व्रत का विकल्प, वह केवलज्ञान की उत्पत्ति में बिलकुल कारण है नहीं। है उसमें? देखो! क्या है तीसरा पद? देखो!

'**ज्ञानेन ज्ञान उत्पाद्यं**'। है २१५ (गाथा)? क्या '**ज्ञानेन**'? श्रुतज्ञानेनं। भावश्रुतज्ञान। अन्दर आत्मा को स्पर्शकर ज्ञान हुआ, स्वानुभव ज्ञान-स्वसंवेदनज्ञान। अपना अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसमें विकल्प नहीं, राग नहीं, कल्पना नहीं। अपना ज्ञान का वेदन होकर भावश्रुतज्ञान जो हुआ, वह भाव निर्विकल्प शुद्ध शान्ति का ज्ञान है। अपना सम्यग्दर्शन सहित। वह '**ज्ञानेन ज्ञान उत्पाद्यं**' इस ज्ञान द्वारा केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है। ज्ञान की क्रिया से केवलज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। बीच में दया, दान का विकल्प आता है, परन्तु उस क्रिया से केवलज्ञान होता है, ऐसा है नहीं। पुण्यबन्ध होता है। कहो, समझ में आया?

'**लोकालोकस्य पस्यते**'। कैसा ज्ञान उत्पन्न होता है भावश्रुतज्ञान द्वारा ? कि केवलज्ञान में लोकालोक (देखता है)। साथ में लिया है। दूसरे में लोक और अलोक दो विभाग, ऐसा है नहीं। लोक जिसमें छह द्रव्य रहते हैं, अलोक जिसमें खाली आकाश है। अपार, अपार, अपार, अपार... ऐसा लोकालोक का जाननेवाला केवलज्ञान अन्तर में सम्यग्दर्शनसहित भावश्रुतज्ञान के अनुभव द्वारा क्रम से ज्ञान की क्रिया बढ़ती-बढ़ती, ज्ञान की क्रिया द्वारा केवलज्ञान होता है कि जो केवलज्ञान लोकालोक को जानता है। पूरी जैनदर्शन की शैली है। लोक और अलोक, तीन काल अन्य में है नहीं। समझ में आया ? अब, २१६।

**सम्यकत यस्य न सार्धते, असाध्य व्रत संजमं।**
**ते नरा मिथ्या भावेन, जीवतोपि मृताएव॥२१६॥**

मुर्दा है। अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने लिया है। मृतक कलेवर जैसा है। उसमें लिया है। समझ में आया ? क्या कहते हैं ? '**सम्यकत यस्य न साध्यते**' जिसमें सम्यग्दर्शन का साधन नहीं हो सकता है। भगवान आत्मा निर्विकल्पस्वभाव की अन्तर श्रद्धा, ऐसा निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का साधन जिसको नहीं है, '**न साध्यते**' साधन नहीं हो सकता है, वह '**असाध्य व्रत संयमं**' उसका संयम और व्रत पालना असाध्य है, असाध्य है। उसमें कोई साध्य है नहीं। साध्य न ? सम्यग्दर्शन का साध्य का साधन नहीं है, उसमें तेरा व्रत और क्रियाकाण्ड दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, जाप ॐ... ॐ करना, इन्द्रिय-दमन सब असाध्य है। अर्थात् वह सच्चा पल सकता नहीं। सम्यग्दर्शन बिना सच्चा व्रत और संयम हो सकता नहीं। अज्ञानी करता है, वह सच्चा है नहीं। समझ में आया ? व्रत और संयम का परिणाम असाध्य है अर्थात् होता ही नहीं।

'**ते नरा मिथ्या भावेन**' मिथ्यात्व की भावनासहित होने से। क्योंकि सम्यक् का भान नहीं है। अपने स्वभाव को देखा नहीं, प्रतीत में आया नहीं, भावश्रुत में वेदा नहीं तो भावना उसकी है नहीं। उसकी भावना तो ये विकल्प करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ (है)। जो दिखता है, उसकी भावना है। मिथ्यात्व की भावना सहित होने से जीवित होने पर भी मृतक के समान ही है। जिन्दा मुर्दा। चलता मुर्दा है, ऐसा अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। ओहो! जीवनशक्ति अपनी अनन्त... अनन्त गुण का भण्डार

जिसमें अमाप शक्ति पड़ी है। परमात्मा ही आत्मा के पेट में पड़ा है। शक्ति में से परमात्मा होता है। समझ में आया? बहुत जगह आता है। अप्पा परमप्पा आता है न? बहुत जगह आता है। अप्पा-अपना आत्मा ही अन्दर परमात्मस्वरूप से पड़ा है। परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप। उससे ही पर्याय में परमात्मा हो है। बहुत जगह आता है। ख्याल है, सब पढ़ा है। सारे पुस्तक पढ़े हैं। समझ में आया?

'**ते नरा मिथ्या भावेन, जीवतोपि मृताएव**'। वह मुर्दे जैसा है। मरे हुए। दिगम्बर साधु हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, हजारों रानी का त्याग हो और जंगल में बसता हो। एक बार भोजन कदाचित् एक-एक महीने के बाद लेता हो। समझ में आया? पद्मासन लगा दिया ऐसा। कहते हैं, अन्तर भान सम्यग्दर्शन की चीज़ क्या और उसका ध्येय क्या, भान नहीं है, साधन है नहीं। '**जीवंतोपि मृताएव**'। जीवित मुर्दा है। कड़क भाषा है। सेठी! जीवित होने पर भी मृतक के समान मर गया है। चैतन्य जीवन तो तेरी दृष्टि में है नहीं। पुण्य-पाप, अल्पज्ञता, दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, विकल्पजाल, उसको सर्वस्व मानते हैं कि हम बहुत करते हैं, बहुत करते हैं, बहुत करते हैं। करते-करते हमारे बहुत वर्ष बीत गये। किसमें? अज्ञान की क्रिया में। समझ में आया? है भैया? पण्डितजी! क्षुल्लकपना कहाँ गया? सम्यग्दर्शन बिना क्षुल्लकपना कैसा? ऐलकपना कैसा? व्रत-फ्रत कैसा? सब मृतक कलेवर जैसा है। कहाँ आया? आहाहा! बहुत कठिन। व्यवहार की रुचिवाले को तो घाव लगे ऐसा है। इसलिए खलबली मच गयी न।... छूट गया है। भगवान का मार्ग ऐसा है। वही बात है। समझ में आया? देखो!.. उसका जीवन अजीवन है। समझ में आया? मृतक के समान है। अब, २२०। २१८ लो। है न?

**सम्यक्त्वयुत नरयम्मि, सम्यक्त्व हीनो न च क्रिया।**
**सम्यक्त्वं मुक्ति मार्गस्य, हीन सम्यक् निगोदयं॥२१८॥**

ओहो! लो, निगोद का आया। सम्यग्दर्शनसहित नरक में रहना अच्छा है। '**सम्यक्त्वयुत नरयम्मि**' है या नहीं? वह तो आता है, योगसार में आता है। योगीन्द्रदेव कहते हैं, समकितदृष्टि नरक में हो तो भी कर्म खिरते हैं। तेरा नरक भी अच्छा है। और मिथ्यादृष्टि का नौवें ग्रैवेयक का होना वह भी व्यर्थ है। समझ में आया? सम्यग्दर्शनसहित नरक में रहना अच्छा है। '**सम्यकत हीनो न च क्रिया**' सम्यग्दर्शन से शून्य है, उसकी कोई

भी क्रिया यथार्थ नहीं है। '**सम्यक्त्वं मुक्ति मार्गस्य**' समकित ही मुक्ति का मार्ग है। लो। मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन मुख्य है। है न? '**सम्यक्त्वं मुक्ति मार्गस्य**' मुक्ति के मार्ग में सम्यग्दर्शन पहले है। सम्यग्दर्शन बिना तेरा ज्ञान भी झूठा, तेरी चारित्रक्रिया भी झूठी, व्रत पालना झूठा, ब्रह्मचर्य पालना झूठा, सत्य बोलना झूठा, रसत्याग झूठा। सब झूठ ही झूठ है। सेठ!

**मुमुक्षु :** मूल बिना...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मूल बिना। वह तो पहले आ गया। मूल बिना शाखा कहाँ से आयी? तेरा ठिकाना नहीं, दर्शनशुद्धि का ठिकाना नहीं। सर्व धर्म समान है, सबमें ऐसा है, सबमें ऐसा है, उसमें भी कुछ है न। उपनिषद में ऐसा कहा है, फलाने में ऐसा कहा है, ढिकने में ऐसा कहा है। सब झूठ। गृहीत मिथ्यात्व। सम्यग्दर्शन तो नहीं, लेकिन मिथ्यात्व की तीव्रता और फिर व्रतादि क्रिया सब निगोद में जानेवाली है। समझ में आया? बहुत कठिन, भाई! समाज में रहना और समाज में ऐसा कहना (कठिन है)।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निगोद का पेट बड़ा है। एक सेठ थे। एक बाई थी, बाई। बाल ब्रह्मचारी। व्याख्यान अच्छा देती थी। अभी भी है, सेठ चल बसे। उसके गाँव की बाई थी। व्याख्यान देती थी। तत्त्व का विरोध करे, बिलकुल विरोध। तत्त्वदृष्टि... सेठ ने कहा, बहिन! ध्यान रखना बोलने में, हों! नहीं तो निगोद का पेट बड़ा है। ऐसा कहा। समझ में आया? बाई ब्रह्मचारी है, बाल ब्रह्मचारी है।... शास्त्र की बात करे, झूठी कल्पना। लोगों का रंजन करे। दो-दो, पाँच-पाँच हजार लोग आये। ओहोहो! तत्त्व से विरुद्ध कहे। यहाँ का विरोध करे। धीरे बहिन को कहा, बहिन! सेठ के गाँव की लड़की थी। इसलिए उसे साध्वी नहीं माने। बहिन! पुत्री! ध्यान रखना, हों! तत्त्व का विरोध करने में। नहीं तो निगोद का पेट बड़ा है। निगोद का पेट बड़ा है, वहाँ जाना पड़ेगा। ऐसा कहा। समझ में आया? ...भाई! मालूम है न? काठियावाड़ में यह बात बनी थी। काठियावाड़ में। ... समझ में आया?

कहते हैं कि '**सम्यक्त्वयुत नरयम्मि**'। सम्यग्दृष्टि का नरक का आयु बँध गया हो

और जाना पड़े। पहले, हों! सम्यग्दर्शन होने के बाद नयी आयु का बन्ध नहीं पड़ता। क्या कहा? समझ में आया? स्वानुभव हुआ, भान हुआ बाद में नरक की गति का बन्ध नहीं पड़ता। परन्तु पहले नयी गति का बन्ध पड़ गया हो,... जैसे श्रेणिक राजा। उन्हें क्षायिक समकित हुआ। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब हजारों थे। हो, उसमें क्या? क्षायिक समकित। नरक का आयु (बन्ध) पड़ा है, नरक में गये। कहते हैं कि सम्यक्त्वयुक्त नरक में भी प्रशंसायोग्य है। वहाँ भी क्रम-क्रम से सिद्धि करते जाते हैं। पहली नरक में तीर्थंकर गोत्र बाँधते हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में गये हैं। समझ में आया? चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में पहली नरक में गये हैं। आगामी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर होंगे। आगामी जगतगुरु त्रिलोकनाथ सौ इन्द्र के पूजनीक, वहाँ से निकलेंगे। छह महीने पहले इन्द्र उसकी माता के पास आयेंगे। माता! जनेता! आपकी कोख में तीन लोक के नाथ जगतगुरु तीर्थंकर पधारनेवाले हैं। बड़े पुरुष आये, तब साफसफाई करते हैं या नहीं? वैसे छह महीने आयुष्य के बाकी हो, ऊपर से इन्द्र माता के पास आयेंगे। अभी नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की (स्थिति है)। क्षायिक सम्यग्दर्शन प्रगट किया है। दूसरा कोई व्रत, नियम कुछ किया नहीं था, है नहीं। तीर्थंकर गोत्र शुभराग आया (तो) बँध गया है। ये आगे आयेगा, एक गाथा में है। २२० में है, इसके बाद आयेगा। समझ में आया?

कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि श्रेणिक राजा नरक में गये, तो भी क्या है? आहाहा! अपने भान सहित है। और '**सम्यकत हीनो न च क्रिया**'। सम्यग्दर्शन से शून्य है, उसकी कोई भी क्रिया यथार्थ नहीं है। लाख, करोड़, अनन्त क्रिया करे, आत्मा की सम्यक् दृष्टि बिना वह सब क्रिया व्यर्थ है। '**सम्यकत मुक्ति मार्गस्य**' समकित मुक्ति का मार्ग है। मुख्य चीज़ यह है। कर्णधार लिया है न? रत्नकरण्ड श्रावकाचार। कर्णधार है। खेवटिया में मुख्य आदमी बैठता है न? ऐसे मोक्षमार्ग में सम्यक्त्ववन्त कर्णधार है। उसको सब विवेक हो गया अन्दर में। क्या वस्तु, क्या स्थिति, क्या पर्याय, क्या गुण, क्या विपरीत, क्या अविपरीत। वह कर्णधार है। कहते हैं कि सम्यक्त्व मुक्तिमार्ग कर्णधार।

'**हीन सम्यक् निगोदयं**' सम्यग्दर्शन से हीन है। हीन का अर्थ रहित लेना। हीन का अर्थ थोड़ा है और थोड़ा नहीं है, ऐसा नहीं लेना। सम्यग्दर्शन कम-ज्यादा होता ही नहीं। या मिथ्यादर्शन, या सम्यग्दर्शन (होता है)। उसमें मिश्र प्रकृति थोड़ी अन्तर्मुहूर्त हो, उसकी

बात नहीं है। सम्यग्दर्शन ..की बात है। कहते हैं, सम्यग्दर्शनरहित निगोदयं। निगोद में चला जाता है। कोई शुभभाव हो तो एकाध भव स्वर्ग में चले जाए, लेकिन बाद में सम्यग्दर्शन रहित है, अन्तर में भान नहीं है तो वहाँ से निकलकर तिर्यंच होकर निगोद में चला जाएगा। फिर अनन्त काल में मनुष्य होना कठिन है। यह श्रावकाचार में बात करते हैं, सेठ! श्रावकाचार, हों! मुनि तो अभी कहाँ है। बहुत अलौकिक बात है। २१९।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, बराबर है। चक्रवर्ती हो और समकित रहित हो तो भी.. उसमें क्या है ?... क्रिया। बराबर है। शब्द अलग किया है। अर्थ में किया है। अर्थ में-सम्यक्त्व शून्य है उसकी कोई भी क्रिया यथार्थ नहीं है। परन्तु सम्यग्दर्शन रहित चक्रवर्ती हो तो भी हीन है। बराबर है। नरक में है, ... सम्यग्दर्शन सहित नरक में जाना अच्छा है, सम्यग्दर्शन रहित चक्रवर्तीपना भी बुरा है। चक्रवर्ती क्या, इन्द्रपद अहमिन्द्र होना बुरा है, लो न। यहाँ तो चक्रवर्ती साधारण लिया है, हाँ! अहमिन्द्र हो नौवीं ग्रैवेयक का, परन्तु सम्यग्दर्शन रहित अहमिन्द्र भी बुरा है। उसमें सब में ऐसा ले लेना। अब,...

**सम्यक्त्वं युत पानस्य, ते उत्तम सदा बुद्धै।**
**हीनो सम्यक्त कुलीनस्य, अकुली अपात्र उच्यते॥२१९॥**

सम्यग्दर्शन सहित जो कोई भी पात्र हो, चाहे हीन भी हो, समझ में आया ? '**युत पानस्य**' उसको पण्डितों ने सदा उत्तम कहा है। '**उत्तम सदा बुद्धै**' ऐसा शब्द पड़ा है न ? ज्ञानियों ने सम्यक्त्व सहित चण्डाल हो, रत्नकरण्ड श्रावकाचार में लिया है,...

**मुमुक्षु :** पशु, पक्षी हो तो भी..

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ठीक है, पशु, पक्षी है न समकिती। बाहर में असंख्य पड़े हैं। असंख्य समकिती पंचम गुणस्थानवाले, चौथे वाले स्वयंभूरमण समुद्र में पड़े हैं। समकिती। सच्चा सम्यग्दृष्टि निश्चय सम्यग्दृष्टि। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य पशु पड़े हैं। मृग, सिंह, बाघ, वरु, हजार योजन का मच्छ सम्यग्दृष्टि, भान है अन्तर में।

कहते हैं, सम्यग्दर्शन सहित कोई भी पात्र हो, चाहे हीन भी हो, पशु, पक्षी हो, कुत्ता हो। कुत्ते को समकित होता है कि नहीं ? बाघ को होता है, सिंह को होता है। देखो! मारकर

खाता है।... रावण का हाथी, त्रिलोकमण्डन हाथी है। त्रिलोकमण्डन हाथी है। भरत का पूर्व का मित्र था। भरत, राम, लक्ष्मण दर्शन करने को जाते हैं। भरत को वैराग्य हुआ तो दीक्षा ले ली। उसको वैराग्य हो गया। जातिस्मरणज्ञान हो गया। पूर्व का भान हो गया। पन्द्रह-पन्द्रह दिन का उपवास है। देखो! ये हाथी। सब लोग ... हैं। सम्यग्दृष्टि हाथी है, जातिस्मरण है। त्रिलोकमण्डन हाथी। महा जंगली हाथी था। रावण को हाथ आया था। मधुवन में से। फिर राम ने जब लिया... घर लाये। वैराग्य। सम्यग्दर्शन सहित, हों!

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन सहित तो पशु भी भला (है)। ओहो! पक्षी भी भला और सम्यग्दर्शन रहित अहमिन्द्र पद और चक्रवर्ती पद भी भला नहीं है। सम्यग्दृष्टि हो, शक्रेन्द्र इन्द्र होता है, वह तो समकिती होता है। अहमिन्द्र मिथ्यादृष्टि होता है। पहले देवलोक का इन्द्र है न, वह तो समकिती होता है। अहमिन्द्र (नौवें ग्रैवेयक का) ऊपर है, वह मिथ्यादृष्टि भी होता है। समझ में आया?

अपना आत्मा क्या चीज़ है, उसका अनुभव का भान बिना, कहते हैं कि चक्रवर्ती, अहमिन्द्रपद भी ... है। और भानवाला.. ओहो! उत्तम सदा। ज्ञानियों ने परमात्मा ने सर्वज्ञ के ज्ञान में... हैं। पशु, पक्षी समकिती हो, उसकी प्रशंसा भगवान की वाणी में आयी। गणधर के आगम में आया है। और दृष्टि मिथ्या भ्रम है, अज्ञान है, उसका बाह्य का त्यागवाला नौवीं ग्रैवेयक चला गया, हीन है, हीन है। क्रम से निगोद में जाएगा। '**हीनो सम्यक्त्व कुलीनस्य**' उत्तम कुलवाला, परन्तु सम्यग्दर्शन रहित है, कहो, समझे? '**अकुली अपात्र उच्यते**'। नीच कुल, नीच पात्र कहा जाता है। परन्तु नीच कुलवाले को नीच पात्र कहा जाता है। किसको? सम्यग्दर्शन रहित उत्तम कुल में जन्म है, तो भी नीच कुल और नीच पात्र है। समझ में आया? पहले में '**पान**' आया था न? '**सम्यक्त्वं युत पानस्य**'। इसमें '**अकुली अपात्र उच्यते**'। सम्यग्दर्शन सहित कोई भी पात्र हो। ... समझ में आया? सम्यग्दर्शन सहित वह पात्र है और सम्यग्दर्शन रहित अकुली अपात्र है। अपात्र है। कितने व्रत पाले, शरीर जीर्ण हो जाए, तो भी उसको अपात्र कहने में आता है। अब, २२०।

**तीर्थ सम्यक्तं सार्धं, तीर्थंकर नाम शुद्धये।**
**कर्म क्षिपंति त्रिविध वा, मुक्ति पंथ सार्धं ध्रुवं॥२२०॥**

जो सम्यग्दर्शन सहित है, '**सार्धं**' है न? '**सार्धं**'। '**सार्धं**' का अर्थ साथ-सहित। जो

आत्मा, अन्तर में सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा ऐसा, भगवान आत्मा का साथ जिसको दर्शन है, तीर्थंकर नामकर्म को बाँधकर। देखो! सम्यग्दर्शन से तीर्थंकर (प्रकृति) नहीं बँधती। सम्यग्दर्शन तो अबन्ध परिणाम है। सम्यग्दर्शन से बन्ध होता नहीं। परन्तु सम्यग्दर्शन की भूमिका में ऐसा विकल्प आता है, और तीर्थंकर गोत्र बँध जाता है। मिथ्यादृष्टि को तीर्थंकर गोत्र का बन्ध का भाव होता ही नहीं। क्योंकि सम्यग्दर्शन नहीं है। समझ में आया? जिसकी दृष्टि अन्तर में अनुभव से विपरीत है, उसको तीर्थंकर गोत्र बँधने का विकल्प कभी तीन काल में होता नहीं। पण्डितजी! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को दर्शनविशुद्ध आदि षोडशकारण (भावना) आती है न? षोडशकारण है विकल्प, हाँ! षोडशकारण भावना है तो आस्रव, है तो राग, है तो पुण्य; धर्म नहीं, संवर नहीं, निर्जरा नहीं।

यहाँ कहते हैं कि जो जीव सम्यग्दर्शन सहित है, वही तीर्थंकर नामकर्म को बाँधकर तीर्थंकरपने जन्म लेता है। तीर्थंकपने जन्म होता है। इतना पुण्यबन्ध उसको होता है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को ही ऐसा पुण्य होता है। मिथ्यादृष्टि, जिसकी दृष्टि विपरीत है, उसको ऐसा पुण्य कभी तीन काल में नहीं होता। इतना यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? आत्मा की शुद्धि लिये होता है और जन्म कैसा है? देखो! '**तीर्थंकर नाम सुद्धये, कर्म क्षिपंति त्रिविध च**'। जन्म ही शुद्धि के लिये है। जहाँ तीर्थंकर हुआ, वह केवलज्ञान लेगा, लेगा और लेगा। उस भव में सम्यग्दर्शन सहित आया, तीर्थंकर प्रकृति बँधी तो बँधने से केवलज्ञान नहीं लेगा, परन्तु वह जन्म ऐसा है कि अपनी शुद्धि बढ़ाकर उस भव में केवलज्ञान लेगा। समझ में आया? तीर्थंकर भाव बँधा उस कारण से नहीं। जिस भाव से तीर्थंकर (प्रकृति) बँधी, वह तो राग था। प्रकृति बँधी, वह तो जड़ है। परन्तु जिसको ऐसा भाव सम्यग्दर्शन सहित आया, वह जन्म लेकर अपना शुद्धि बढ़ायेगा और उस भव में केवलज्ञान पायेगा।

'**मुक्ति पंथ सार्धं ध्रुवं**'। उसे यथार्थ मोक्ष का मार्ग विद्यमान है। और तीन प्रकार का कर्म क्षय करते हैं।... नोकर्म, जड़कर्म, भावकर्म। नोकर्म शरीर रहित हो जाता है, द्रव्यकर्म कर्म रहित हो जाता है, पुण्य-पाप के विकल्प रहित हो जाता है। तीनों कर्म को खिराकर वह उस भव में पूर्ण शुद्धि प्राप्तकर मोक्ष प्राप्त करता है। ऐसा सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है। वह माहात्म्य यहाँ कहने में आया है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

६

आसोज शुक्ल १२, रविवार, १८-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-२२१, २२३, २२४, २३६, प्रवचन - २३

श्रावकाचार, तारणस्वामी द्वारा रचित, उनकी २२१ गाथा है। कल २२० हो गयी थी। २२१। देखो! श्रावक का आचरण कैसा होता है और उसको श्रावक कहने में आता है। प्रथम तो...

**सम्यकते यस्य चिंतति, बारंबारेन सार्थयं।**
**दोष तस्यं न पस्यंते, सिंध मातंग जूथयं॥२२१॥**

क्या कहते हैं? देखो! जो कोई सम्यग्दर्शन को यथार्थरूप से। '**सार्थयं**' है न? यथार्थरूप से। यथार्थरूप का अर्थ क्या? नौ तत्त्व जैसे हैं, ऐसा यथार्थ ज्ञान करके। भिन्न-भिन्न नौ तत्त्व का कार्य है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। उसमें दो द्रव्य है और सात पर्याय है। उसका नौ का भिन्न-भिन्न कार्य है, भिन्न-भिन्न मार्ग है। ऐसा बारम्बार निर्णय करके, बाद में यथार्थपने बारम्बार आत्मा का अनुभव करना। '**चिंतते**' का अर्थ अनुभव है। '**चिंतते**' (शब्द) है न? उसका अर्थ अनुभव है।

'**सम्यकतं यस्य चिंतति**' सम्यग्दर्शन-आत्मा परिपूर्ण शुद्ध, पुण्य-पाप का विकल्प से, देहादि से, कर्म से भिन्न ऐसा समकित को '**यस्य**' जो कोई '**चिंतति**' नाम अनुभव करता है अन्दर में। '**बारंबारेन सार्थयं**'। बारम्बार अनुभव में लगता है। अन्तर्मुख राग और पुण्य-पाप का भाव, उससे भिन्न अपने आत्मा को अन्तर में बारम्बार यथार्थपने लगता है। यथार्थ क्यों कहा? अनादि से अज्ञानी अपनी कल्पना से माने कि ऐसा नौ तत्त्व और ऐसा-ऐसा है। विकल्प और कल्पना से आत्मा में एकाग्र हो, वह यथार्थ एकाग्रता नहीं है। समझ में आया? बारम्बार अर्थात् बारम्बार अनुभव करते हैं। (यह) '**चिंतते**' का अर्थ है।

'**दोष तस्यं न पस्यंति**'। उसको दोष नहीं आते हैं। उसका दोष अन्तर में आते नहीं। स्वभाव की दृष्टि में दोष का आदर होता नहीं। समझ में आया? कहो, सेठी! भगवान आत्मा... बाद में २२३ में कहेंगे। एक समय में नौ तत्त्व में ज्ञायकतत्त्व, पुण्य परिणाम— दया, दान, भक्ति, व्रत का विकल्प है, वह पुण्यतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना पापतत्त्व है। दोनों मिलकर आस्रवतत्त्व है। त्रिकाल ज्ञायक आनन्द शुद्ध स्वभाव (है)। राग में जितना रुकता है, इतना भावबन्धतत्त्व है। शरीर, कर्म आदि अजीवतत्त्व है और त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करने से शुद्धि की उत्पत्ति होती है, वह संवरतत्त्व है। विशेष एकाग्रता होने से शुद्धि की वृद्धि होती है, वह निर्जरातत्त्व है और पूर्ण शुद्धि की प्राप्ति होती है, उसका नाम मोक्षतत्त्व है। समझ में आया?

ऐसी बात जैनदर्शन अथवा आत्मदर्शन बिना तीन काल में दूसरे स्थान में ऐसा होता नहीं। इसलिए '**सार्थयं**' यथार्थ रूप नौ तत्त्व का भान कर, आत्मा का बारम्बार अनुभव करते हैं। '**दोष तस्यं न पस्यंते**' वहाँ दोष आते नहीं। अल्प दोष होते हैं, उसे अपने में मिलाते नहीं। सम्यग्दृष्टि तीन कषाय, दो कषाय का रागादि होता है, परन्तु अपने स्वभाव में मिलाते नहीं। समझ में आया? शास्त्र वाँचन में बहुत जिम्मेदारी है। सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव तीर्थंकरों, गणधरों, सन्तों से अनादि से जो प्रवाह से मार्ग चला आ रहा है, उसमें से एक भी फेरफार बदाममात्र हो जाए (तो) सारे तत्त्व में विरोध हो जाए। समझ में आया? इसलिए यहाँ '**सार्थयं**' (कहा है)। बराबर यथार्थपने बारम्बार सम्यग्दर्शन की चीज़ को अनुभव में करते हैं, उसको '**दोषं तस्य न पस्यंते**'। उसको दोष आता नहीं। कैसे?

'**मातंग जूथयं**' हाथी के झुण्ड सिंह को नहीं देखते हैं। समझ में आया? जहाँ सिंह है, वहाँ हाथी रहता नहीं। जहाँ सिंह की गर्जना सुने, हाथी का समूह चला जाता है। है न? '**सिंघ मातंग जूथयं**'। '**मातंग**' अर्थात् हाथी का समूह हो, एक सिंह की गर्जना हो, चले जाते हैं। ऐसे भगवान आत्मा अपने सम्यग्दर्शन का टंकार, रणकार अन्दर में अनुभव में करते हैं, दोष चला जाता है। दोष रहता नहीं। दोष पलायमान हो जाता है। थोड़ा दोष रहता है, उसका भेद रहता है, उसका नाम पलायन कहने में आता है। समझ में आया? दृष्टान्त दिया है न? सिंह को नहीं देखते। नहीं देखते का अर्थ हाथी वहाँ खड़ा ही नहीं रहता। जहाँ सिंह है, वहाँ हाथी नहीं रहता।

इसी तरह अपना स्वरूप एक समय में विकल्प आदि हो, रागादि हो, शरीरादि हो, है सब (अस्ति)। उससे निराला अपना स्वरूप का अनुभव दृष्टि करनेवाला अपने में सिंह की भाँति स्वभाव की एकाग्रता की पुकार रण पुकार (करता है तो) दोष आते नहीं। '**दोष तस्यं न पस्यंति**' समझ में आया ? उसको दोष अन्तर में होता नहीं। उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। ये अविरत सम्यग्दृष्टि का श्रावकाचार (है)। समझ में आया ? अभी आया नहीं ? कौन-सी गाथा आयी ? २५४ ? अभी २५४ कही न ? भाई ! देखो ! '**आचरण द्विविधं प्रोक्तं**' उसके साथ सम्बन्ध है। यह श्रावकाचार है न ? तो '**आचरण द्विविधं प्रोक्तं**' ऐसे लेना। '**त्रिविधं प्रोक्तं**' नहीं लेना।

भगवान परमात्मा ने आचरण दो प्रकार का '**प्रोक्तं**' सविशेष से कहा है। एक, सम्यक्त्व, एक संयम। प्रथम '**प्रथमं सम्यक्त्व चरणस्य, स्थिरी भूतस्य संजम।**'

**चारित्रं संयम चरणं, शुद्ध तत्त्व निरीक्षणं।**
**आचरणं अबंध्य दिस्टे, सार्धं शुद्ध दृष्टितं॥२५५॥**

देखो ! आचरण दो प्रकार का कहा गया है। आचरण का दो प्रकार है। एक, सम्यक्त्व आचरण। समझ में आया ? सम्यक्त्व आचरण का अर्थ अपना शुद्ध चैतन्य राग और पर से रहित एकाकार का दर्शन होना, वह सम्यक्त्व आचरण नाम का प्रथम आचरण कहने में आता है। कोई कहे कि आचरण-बाह्य क्रिया करे, वह आचरण है। यह आचरण है, वह आचरण नहीं है। समझ में आया ? पहला सम्यक्त्व आचरण है। सम्यग्दर्शन में पहला सम्यक् आचरण है। पण्डितजी !

दूसरा, निश्चय संयम आचरण। दूसरा सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप में चारित्र की विशेष लीनता। अनाचरण रागादि को छोड़कर स्वरूप में स्थिरता उग्रपने करना, वह संयमरूपी दूसरा आचरण है। परन्तु जिसको सम्यग्दर्शन आचरण होता है, उसको संयम आचरण होता है। सम्यग्दर्शन आचरण नहीं है, वहाँ संयम आचरण बिल्कुल होता नहीं। इसलिए यहाँ दो शब्द में पहले सम्यक् आचरण कहने में आया है।

'**प्रथम अस्थिरीभूतस्यं सम्यक् चरणं संयमं**'। प्रथम जो सम्यक् आचरण है, वह श्रद्धान में स्थिर हो करके भी चारित्र अपेक्षा से चंचलरूप है। देखो ! है न ? '**अस्थिरीभूतस्यं**'।

सम्यग्दर्शन आचरण में... अपने अष्टपाहुड़ में दो आचरण आता है। वही शब्द है। आता है। समझे? शीलपाहुड़ में आता है, शीलपाहुड़ है न? चारित्रपाहुड़ में आता है। सम्यक् चरणं। भगवान आत्मा.. मूल गाथा है। '**अस्थिरीभूतस्यं सम्यक् चरणं संयमं**'। सम्यक् आचरण होता है, वहाँ श्रद्धान में स्थिर (होता है)। सम्यग्दर्शन में नि:शंक स्वरूप की प्रतीति का अनुभव। उसमें बिल्कुल दोष है नहीं। परन्तु चारित्र की अपेक्षा से चंचलरूप है। '**अस्थिरीभूतस्यं संयमं**' '**स्थिरीभूतस्य सम्यग्दर्शन**'। उसमें से ऐसे लेना। सम्यग्दर्शन में स्थिरभूत है और संयम की अपेक्षा से अस्थिरीभूतं है। चारित्र का दोष है उसमें। सम्यक् आचरण में संयम आचरण नहीं होता। समझ में आता है?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसमें समझ में आये (ऐसा है)। यह तो सीधी बात सादे में सादी चलती है।

आत्मा अपना शुद्ध स्वरूप, पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध और निमित्त एवं अजीव से हटकर, अपना पूर्णानन्द स्वरूप की प्रतीति का अनुभव करे, उसे सम्यक् आचरण कहने में आता है। यह सम्यक् आचरण, समकिती का सम्यक् आचरण चौथे गुणस्थान में (होता है)। इस आचरण में स्वभाव की श्रद्धा स्थिर है। श्रद्धा में अस्थिरता है नहीं। परन्तु संयम की अस्थिरता, चंचलता सम्यक् चरण में होती है। कहो, समझ में आया? वल्लभदासभाई!

**मुमुक्षु :** यह नया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नया कुछ नहीं है। यह सब तो अपने शास्त्र में आ गया है। यह तो सेठ को उतारना है उसमें (टेप में) इसलिए लेते हैं। यहाँ तो शास्त्र में ये सब आ गया है। तीन हजार तो उतर गये हैं। रिकार्डिंग। तीन हजार तो रिकार्डिंग उतर गया है। पूरा समयसार ४०५ रिकार्डिंग उतर गया है। पूरा समयसार। ४०५ रिकार्डिंग उतरा है। सब उतरता है। यहाँ तो बीस साल से चलता है। समझ में आया? यह तो तारणस्वामी की साक्षी के शास्त्र में क्या है, वह बताना है। समझ में आया? हम तारण समाज है। परन्तु क्या तारण समाज कहता है, खबर है? खबर नहीं है तो समाज कहाँ से आया? डालचन्दजी! समझ में आया?

भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र परमेश्वर, उसके मार्ग में जो कहा, वह अपनी भाषा में तारणस्वामी ने चलती भाषा में लिखा है। सादी साधारण भाषा में। समझ

में आया? '**प्रथम अस्थिरीभूतस्यं सम्यक् चरणं संयमं**' प्रथम जो समकित नि:शंक अपने अनुभव में (आया है)। मैं पूर्णानन्द हूँ। मेरी पर्याय में विकार है, यह मेरा स्वभाव नहीं। कर्म आदि का संयोग व्यवहार से है। परमार्थ से मेरा सम्बन्ध है नहीं। ऐसे सम्यग्दर्शन के आचरण में श्रद्धान में स्थिर होकर भी चारित्र चंचल है। उस चंचलपने को मिटाकर स्थिर होना सो संयम है। लो। पंचम और छट्ठा गुणस्थान की बात है। आंशिक संयम आचरण पाँचवें में है, विशेष संयम आचरण छट्ठे में है।

संयम का अर्थ-आत्मा जैसा शुद्ध परमानन्द ज्ञायक अपने भान, अनुभव में आया था, उसमें लीन, स्थिर, एकाकार हो जाना, उसका नाम संयम आचरण कहने में आया है। उसमें संयम की चपलता जो पहले सम्यग्दर्शन में थी, वह संयम में अस्थिरता, चपलता रहती नहीं। समझ में आया? देखो! '**चंचल संयम चरणं**' ऐसे संयमभाव में चर्या करना, दूसरा संयम आचरण सम्यक्चारित्र है। जहाँ '**शुद्ध तत्त्व निरीक्षणं**'। शुद्ध आत्मिक तत्त्व का ही अनुभव होता है। वह आचरण सफल देखा जाता है। क्या कहते हैं? चौथे गुणस्थान में, पाँचवें और छट्ठे में जहाँ-जहाँ निर्मल सम्यग्दर्शन और संयम का अन्तर निर्विकल्प अनुभव है, वह यथार्थ आचरण सफल देखने में आया है। साथ में पंच महाव्रत का विकल्प मुनि को हो, पंचम गुणस्थान में बारह व्रत का विकल्प हो, चौथे गुणस्थान में भक्ति, दया, दान आदि का विकल्प हो, वह व्यवहार आचरण है। यह परमार्थ आचरण नहीं है। स्वभाव में स्थिर होना, वह परमार्थ आचरण की सफलता है। समझ में आया? निश्चय की बात है न? मुख्य निश्चय की बात है। इसलिए कहा है। देखो!

'**शुद्ध तत्त्व निरीक्षणं**'।... आचरण सफल देखा जाता है। वही यथार्थ शुद्धात्मा का दर्शन है। लो। '**सार्धं शुद्ध दृष्टितं**'। समझ में आया? यह तो यहाँ समकित आचरण आया न? २२१ में। समझे? समकित कहा न? समकित के साथ आचरण ऐसा लेना। अपना समकित शुद्ध चैतन्य सर्वज्ञ परमात्मा के शासन में कहा ऐसा, ऐसे स्वभाव की अन्तर्दृष्टि करके एकाग्रता होना, सम्यग्दर्शन में अस्थिरता न होना, वह सम्यग्दर्शन का आचरण है। नि:शंक, नि:कांक्षित आदि आठ आचार है या नहीं? समकित का आठ निश्चय आचार है। निश्चय। व्यवहार तो देव-गुरु-शास्त्र में श्रद्धा, उसमें शंका न करना वह व्यवहार विकल्प है। यहाँ निश्चय की बात है।

स्वरूप में निःशंक पूर्णानन्द प्रभु, मेरा स्वरूप परमात्मा ही मैं हूँ, ऐसा अनुभव में देखना। निःकांक्ष-पुण्य की भी इच्छा का विकल्प नहीं। समझे? अन्य देव, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की तो इच्छा नहीं, परन्तु पुण्य के विकल्प की इच्छा नहीं। निःकांक्ष निश्चयचारित्र है। समकित का निश्चय आचार है। निःशंक, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा। सन्देह नहीं कि मैं इतना-इतना पुरुषार्थ करता हूँ, क्यों केवलज्ञान नहीं होता है? समझ में आया? अपने पुरुषार्थ की कमी है, उसमें सन्देह होता नहीं। अमूढ़दृष्टि। मूढ़ नहीं। यह परिपूर्ण स्वभाव कहते हैं, ऐसा है, श्रद्धा में भासता है परन्तु प्रगट नहीं होता। समझ में आया? उलझन में नहीं आता, मूढ़ नहीं होता। मेरे पुरुषार्थ की जितनी कमी है, उतनी पर्याय में पूर्णता आती नहीं। उलझता नहीं। मैं परिपूर्ण आत्मा हूँ। ऐसा अनुभव की दृष्टि में देखना और उसमें उलझन में नहीं आना। क्या कहते हैं? घबराना नहीं। तुम्हारी हिन्दी भाषा हमें बराबर नहीं आती। हमारे में मुंझाना नहीं (कहते हैं), मुझाता नहीं। ऐसी काठियावाड़ी भाषा है। समझे? घबराहट नहीं होना। यह क्या? ध्यान करते-करते ध्यान अस्थिर हो जाता है। अरेरे..! क्या मुझे आत्मा की शुद्धता नहीं प्रगट होगी? पूर्ण नहीं होऊंगा। ऐसी उसमें मूढ़ता आती नहीं।

उपगूहन। अन्दर में अपने गुण की वृद्धि करते हैं। शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करके, अनुभव करके शुद्धि की वृद्धि करते हैं, वह उपगूहन है। स्थिरिकरण—अपने स्वरूप में स्थिर होना, अस्थिर न होना। वात्सल्य—अपने अनन्त गुण प्रति वात्सल्य-प्रेम। जैसे गाय के बच्चे पर गाय को प्रेम है। गाय कहते हैं न? गौ। बछड़े पर-बच्चे पर। ऐसे अपने अनन्त गुणों पर प्रेम है। राग और विकल्प पर प्रेम नहीं। प्रभावना—प्र-भावना। अपने अनन्त गुण जो दृष्टि में, ज्ञान में लिये हैं उसकी प्र-विशेषरूप से भावना-एकाग्र होकर शुद्धि की वृद्धि करना, उसका नाम निश्चय निःशंकता से लेकर प्रभावना (तक), समकित का आठ आचरण कहने में आता है। समझ में आया? कितना याद करना इसमें? २२१ हो गयी। २२३।

**यस्य हृदये सम्यकते, उदयं शाश्वतं स्थिरं।**
**तस्य गुणस्य नाथस्य, आसक्तं गुण अनंतयं॥२२३॥**

जिसके अन्तरंग में अविनाशी शाश्वत स्थिर समकित ... है न? अर्थ में से.. निकाला। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध की ऐसी प्रतीति अनुभव में आ जाए कि क्षायिक दशा जैसी। समझ में आया? भले क्षयोपशम समकित हो तो भी वह क्षायिक लेकर (रहता है)। क्षायिक हो, तब क्षयोपशम का नाश हो। ऐसा समकित शुद्ध शाश्वत उदयं अविनाशी निश्चल ... लिया है।

'**तस्य गुणस्य नाथस्य**' समकिती कैसा है? शेष गुण-अनन्त गुण का स्वामी है। समकिती अनन्ता, अपने अनन्त गुण का स्वामी-धनी है। राग का धनी नहीं, लक्ष्मी का मालिक नहीं, स्त्री का मालिक नहीं, देश-राज का मालिक नहीं। समझ में आय? अनन्त गुण का आता है न? एक बार अनन्त गुण नहीं कहे थे? कितने गुण कहे थे? पण्डितजी! सुना है या नहीं? एक द्रव्य में कितने गुण? कहा था न? नहीं थे? थे। नहीं थे?

अभी तक जितने सिद्ध हुए हैं न? सिद्ध। छह महीने और आठ समय में ६०८ जीव मुक्ति में जाते हैं। छह महीने और आठ समय में ६०८ केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति में जाते हैं। इस मुक्ति की संख्या अनन्त है। अनन्त पुद्गल परावर्तन से अनादि से मुक्ति चली (आयी) है। मुक्ति कभी नहीं थी, पहले संसार था और सिद्धपद नहीं था, ऐसा है नहीं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा है नहीं। ... अज्ञानी लोक भ्रमणा में कहते हैं। आठ वर्ष संसार बड़ा है। बाद में मुक्ति छोटी है। अरे! अक्ल के खां! अक्ल का खां अर्थात् खा जानेवाला। समझ में आया? पहले आठ वर्ष था और बाद में मुक्ति हुई, ऐसा संसार अनादि में है ही नहीं। अनादि-अनन्त सिद्ध है, अनादि संसार है। पहले संसार (था) और बाद में सिद्ध (होने लगे), मुक्ति, ऐसा अनादि में है नहीं। समझ में आया? डालचन्दजी!

**मुमुक्षु :** नयी बात आयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या नयी बात है, नयी कुछ नहीं। यहाँ तो बहुत बार आ गयी है। एक जीव की अपेक्षा से मुक्ति आदि होती है और अनादि अपेक्षा से तो अनादि आदि बिना अनन्त सिद्ध हैं। पहले सिद्ध कभी एक भी नहीं थे और सब संसारी थे, तो नौ तत्त्व कहाँ रहे अनादि से?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** न रहे, कहाँ से न रहे ? वस्तु अनादि है। नौ तत्त्व अनादि है। वल्लभदासभाई ! ये तो वकील (है), वकालत कराते हैं। समझ में आया ? ये.. भीखाभाई ! भाई ! प्रभु ! यह मार्ग तो अन्तर का है। उसमें गड़बड़ थोड़ी भी चले नहीं। थोड़ी हो तो जैसे आँख में कण आता है न ? कंकर, .... वैसे आँख में नहीं (सुहाता है) तो चैतन्य की आँख... आगे कहीं आता है, हाँ ! लोचन कहा है। आयेगा, कहाँ होगा कैसे पता पड़े ? समकिती का ज्ञान आँख है। सम्यग्ज्ञान चैतन्य आँख है। उसमें एक कण भी विपरीत हो सकता नहीं।

अनादि से सिद्ध अनन्त हैं। पहले सिद्ध कभी नहीं थे और सिद्ध हुए, (यदि ऐसा हो तो) नौ तत्त्व अनादि के रहते नहीं। पंडितजी ! अभ्यास नहीं, वस्तु का व्यवहार शास्त्र का अभ्यास नहीं। उसको यह निश्चय की दृष्टि तो कहाँ से हो ? सेठ ! ओलम्भा तो बहुत देते हैं। आहाहा ! भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ, उसके आगम का अभ्यास नहीं होता। अरे ! आगम का अभ्यास होने पर भी अन्तर-अनुभव नहीं हो तो सम्यग्दर्शन नहीं होता। यहाँ तो अभी आगम के अभ्यास में गड़बड़ (करते हैं), विपरीतता का पार नहीं, उसको सम्यग्दर्शन कभी होता नहीं। समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि समझते हैं कि अनादि से अनन्त सिद्ध (हैं)। अनन्त पुद्गल परावर्तन हो गया। सिद्ध की संख्या कितनी ? अनन्त। उससे निगोद के एक शरीर में अनन्त गुना जीव हैं। वह तो आया नहीं ? बताया था न ? यह लील-फूग है न ? लील-फूग को क्या कहते हैं ? काई-काई। पानी में नहीं होती है ? काई। बटाटा-आलू, शक्करकन्द, मूला। उसका एक राई जितना कण लो तो उसमें असंख्य औदारिकशरीर है। औदारिकशरीर असंख्य। असंख्य चौबीसी के समय जितने। असंख्य चौबीसी के जितना समय होता है, उतना तो एक औदारिकशरीर में है। एक औदारिकशरीर में अभी तक सिद्ध हुए उससे अनन्त गुना जीव हैं। समझ में आया ? लो, अभी तो बहुत आगे का कहना है। अभी तो प्रथम सीढ़ी की बात है।

ऐसे सिद्ध से अनन्तगुना जीव की संख्या (है)। एक शरीर में अनन्तगुना। ऐसे-ऐसे असंख्य शरीर। ऐसे जीव की संख्या सिद्ध से अनन्तगुनी। और जीव की संख्या से

परमाणु की संख्या, ये परमाणु है न, अनन्त परमाणु का स्कन्ध है, पिण्ड है, ये.. ये.. सब, कार्मण शरीर, मन, वाणी, यहाँ मन है रजकण जड़ मिट्टी का, आठ पंखुड़ी के (आकार का) यहाँ है, जीव विचार करता है तो निमित्त है। जैसे आत्मा देखता है तो ये जड़ आँख निमित्त है। ये तो जड़ अनन्त रजकण का पिण्ड है। ऐसे मन है। वह सब जड़। वाणी जड़। उसके सब रजकण सारी दुनिया के सब जीव से अनन्तगुना रजकण है। समझ में आया? सब जीव संसारी से रजकण की परमाणु अनादि अस्तित्व अनादि-अनन्त अनन्तगुणी संख्या है। उससे अनन्तगुनी संख्या त्रिकाल का समय है। एक सेकेण्ड के असंख्य समय जाए। क्या (कहा)? एक सेकेण्ड में असंख्य समय जाए। काल का सूक्ष्म भाग समय। एक सेकेण्ड में आँख ऐसा करे तो असंख्य समय (जाए)। ऐसा त्रिकाल का समय, अनादि-अनन्त समय, वह परमाणु की संख्या से अनन्तगुना है। त्रिकाल समय से आकाश के प्रदेश अनन्त गुना हैं। है.. है.. है.. है.. अस्ति नहीं है, ऐसा है? है.. है.. है.. त्रिकाल पर्याय से आकाश के प्रदेश अनन्त गुना है। और उससे अनन्तगुना एक जीव और एक परमाणु के अनन्त गुण हैं। समझ में आया? कहा न? क्या कहा? समझ में आया या नहीं? २२३ (गाथा) चलती है या नहीं?

गुण अनन्त, शब्द पड़ा है या नहीं? चौथा पद क्या है? अनन्त (का अर्थ) अनन्त इतना। कितना? अभी कहा इतना, कहा इतना। कहते हैं कि '**तस्य गुणस्य नाथस्य, आसक्तं गुण अनंतयं**'। अनन्त गुण दृष्टि में आये हैं, उन अनन्त गुण का ज्ञानी स्वामी है। सम्यग्दृष्टि अनन्त-अनन्त ऐसे गुण, ऐसा आत्मा अनन्त गुण का एक द्रव्य। उसका सम्यग्दृष्टि स्वामी है। राग का नहीं। राग में पड़ा हो, फिर भी वह राग का स्वामी नहीं है। राग का स्वामी नहीं, देह का स्वामी नहीं, कर्म का स्वामी नहीं, धन का स्वामी नहीं। कहो, सेठ! मकान का स्वामी नहीं। यहाँ मकान किया था सेठ ने, तब ये भाई बोले थे यह तो पत्थर का बना हुआ है। बात सच्ची है। डालचन्दजी! कहा था या नहीं? पत्थर से बना है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पैसे से कुछ बना नहीं, वह तो पत्थर से बना है। पैसे से बना कहना व्यवहार है। पैसा भिन्न चीज़ है, पत्थर भिन्न चीज़ है। समझ में आया? पैसा अनन्त परमाणु हैं। दूसरे परमाणु से दूसरा परमाणु होता है? समझ में आया? यहाँ पहले कहा न?

जीव से अनन्तगुना परमाणु हैं। अनन्त परमाणु कैसे रहेंगे अपनी सत्ता में? कि दूसरे अनन्त परमाणु जो पैसा है, उस पैसे में अनन्त परमाणु हैं। एक नोट में अनन्त परमाणु है। नोट से मकान बना है? दूसरे परमाणु से दूसरा परमाणु बनता है? ...चन्दजी! क्या है यह? आहाहा! अनन्तगुना जीव से पुद्गल रहते नहीं। दूसरा पुद्गल से दूसरा पुद्गल बन जाए तो दोनों एक हो जाए। आहाहा!

कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि अन्तरंग में '**तस्य गुणस्य नाथस्य**' वह गुण का नाथ है। उसका अर्थ—अपना अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका स्वामी है। दृष्टि, ज्ञान में जितना प्रगट हुआ, उतनी पर्याय की रक्षा करता है और जितनी पर्याय आदि प्रगट नहीं की, उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अनन्त गुण तो स्वरूप में है। पर्याय में-अवस्था में अल्प गुणांश भी प्रगट हुआ है, उसकी रक्षा (करता है)। नाथ का अर्थ-जोगक्षेम को करनेवाले को नाथ कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसमें सर्व गुणांश, वह समकित। सर्व गुण का एक-एक अंश प्रगट हुआ है। समझ में आया? प्रगट हुआ, उसका रक्षण करता है और नहीं प्रगट हुआ, उसे प्रयत्न करके प्राप्त करते हैं। उसका नाम अनन्त गुण का स्वामी और पर्याय का स्वामी सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि राग, पुण्य, व्यवहार का स्वामी है नहीं। समझ में आया? देखो!

'**आसक्तं गुण अनंतयं**' देखो! '**आसक्तं**' का अर्थ वह किया कि अनन्त गुण पाये जाते हैं। दृष्टि में अनन्त गुण हैं और पर्याय में भी अनन्त गुण का एक अंश प्राप्त हुआ है। आहाहा! पर्याय समझे? व्यक्त। गुण शक्ति (रूप) है। अनन्त गुण की शक्ति जो अननत गुण है, उसमें से अनुभव दृष्टि करके अनन्त गुण जितने हैं, उसमें से एक-एक अंश निर्मलता का सम्यग्दर्शन में (प्रगट हो जाते हैं)। सर्व गुणांश, वह समकित। इतना अंश प्रगट हुआ है। बाकी प्रगट करने का प्रयत्न है। उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। यह सम्यक् आचरण की बात चलती है। ओहोहो!

**मुमुक्षु :** पहले तो चारित्र का आचरण आवे, बाद में समकित का।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चारित्र धूल में आवे। पहले से कहाँ से आता है? ऐई! डालचन्दजी! क्या कहा? पहले से व्रत ले लेना, ब्रह्मचर्य लेना, दया पालना, संयम पालना। बस! संयम आया, इसलिए अन्दर समकित होगा ही।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है नहीं। अन्दर सम्यग्दर्शन है नहीं तो संयम कहाँ से आया? व्रत और महाव्रत पालकर मर जाए, उसमें क्या है? छह-छह महीने के उपवास करे। समझ में आया? वह तो बात की थी न? '**उग्र तव**' कल कहा था न? '**उग्र तव**' शब्द आया था न? कल आया था न? '**उग्र तव**'। कल आया था एक श्लोक में। (श्लोक-२०८)। उग्र तप करे, मर जाए बारह व्रत के, उपवास करके, सामायिक और प्रौषध उसके माने हुए (करके) मर जाए तो क्या है? सम्यग्दर्शन की अन्तर अनुभव दृष्टि बिना, वह सब तो विकल्प है, पुण्य के परिणाम हैं और धर्म मानते हैं तो मिथ्यात्व की पुष्टि करते हैं। अनन्त पाप की पुष्टि करते हैं। समझ में आया?

दृष्टान्त देते हैं न? 'बिल्ली निकालते ऊँट घुसा'। आपने सुना है? नहीं सुना है। बिल्ली-बिल्ली होती है न? बिल्ली। बिल्ली-बिल्ली। बिल्ली नहीं होती? एक बुढ़िया थी, बुढ़िया। वृद्ध बाई। वह थोड़ी कंजूस थी। उसके घर के पास एक वाड़ा था। वाड़ा समझे? खाली जगह। खुली जगह थी। खुली जगह में एक बिल्ली मर गयी। बिल्ली मर गयी। बाई ने देखा कि बिल्ली मर गयी, अब क्या करना? हरिजन को... क्या कहते हैं? भंगी। भंगी को बोलेंगे तो एक प्याली, दो प्याली.. अनाज की प्याली क्या कहते हैं? (अनाज) देना पड़े। इतना अनाज देना पड़ेगा। गुप्तता से लेकर, टोकरी में राख लेकर, टोकरी होती है न? उसमें चूल्हे में से राख निकालकर बाहर डालने गयी। बाहर डालने गयी और दरवाजा था, खाली दरवाजा खुला रह गया। वहाँ एक ऊँट घूमता था, ऊँट। ऊँट समझे? ऊँट घूमता था, मरने की तैयारी जैसा जीर्ण (हो गया था)। बाई डालने गयी तो ऊँट अन्दर घुस गया। अन्दर घुसा और ऊँट मर गया। डालकर वापस आयी और देखा, हाय.. हाय..! इसका क्या करना? बिल्ली को तो फेंक दिया, इस ऊँट का क्या करना? इसे तो उठाकर फेंक नहीं सके। हरिजन को बुलाया। (उन्होंने) चार मण गेहूँ माँगे। चार मण गेहूँ। एक बोरी गेहूँ चाहिए, तो निकालेंगे। हाय.. हाय..! यह दृष्टान्त हुआ।

वैसे अज्ञानी अकेला व्रत, तप, संयम, इन्द्रिय दमन का राग करते-करते मुझे धर्म हो जाएगा। वह बिल्ली मरी है। समझ में आया? उसकी जहाँ रक्षा करने जाता है, वहाँ मिथ्यात्व का ऊँट अन्दर घुस जाता है। समझ में आया? राग की क्रिया का स्वामी होता

है। राग मेरा कार्य है। दया, दान, व्रत, ब्रह्मचर्य आदि का विकल्प मेरा कार्य है। राग का स्वामी होता है तो मिथ्यात्व का लड़का-ऊँट अन्दर घुस गया। ऊँट मर गया। मिथ्याश्रद्धा में तेरे आत्मा की जिन्दा ही मृत्यु हो गयी। समझ में आया ? करने गया व्रत, नियम, परन्तु स्वभाव का तो भान है नहीं। इसलिए राग की क्रिया का कर्ता हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया ? कड़क बात है।

कहते हैं कि पहले सम्यग्दर्शन का भान बिना व्रतादि का आचरण, संयम का आचरण कभी तीन काल में होता नहीं। बाहर से दुनिया देखे और दुनिया माने कि सत्य वस्तु में कोई विरोध नहीं आता, वह झूठ है। २२४।

**सम्यकतं येन दृष्टंते उदयं भुवनत्रयं।**
**लोकालोकविलोकं च, आलबाले मुखं यथा॥२२४॥**

देखो! कितना सम्यग्दर्शन का माहात्म्य और क्या स्वरूप है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। जिसने सम्यग्दर्शन का अनुभव कर लिया है, '**दिष्टंते**' का अर्थ अनुभव। भगवान आत्मा राग पुण्य-पाप का विकल्प होने पर भी, व्रतादि का विकल्प होने पर भी मेरा स्वरूप उससे भिन्न है, उसका मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ऐसा सम्यग्दर्शन अनुभव कर लिया है। '**उदयं भुवन त्रयं**' तीन लोक का ज्ञान हो गया। '**उदयं भुवन त्रयं**' श्रुतज्ञान से, भावश्रुतज्ञान से तीन लोक में क्या है, सबका ज्ञान हो गया। कहाँ-कहाँ कैसे द्रव्य, गुण, पर्याय परिणमते हैं, स्वतन्त्र कैसी चीज़ है, नौ (तत्त्व का) भान होने से भुवन-तीन लोक का ज्ञान सम्यग्दृष्टि को होता है। प्रत्यक्ष नहीं। परन्तु श्रुतज्ञान के बल से स्वर्ग, नरक में क्या पर्याय है, समकिती कैसा है, मिथ्यादृष्टि कैसा है, सबका ज्ञान भावश्रुतज्ञान में आ जाता है। समझ में आया ? '**उदयं भुवन त्रयं**' क्या तीन भुवन अन्दर में प्रगट होता है ? भुवन त्रय का ज्ञान प्रगट होता है। पाठ तो ऐसा है, '**उदयं**'। समझ में आया ?

'**लोकालोकविलोकं**' उसने लोक-अलोक को अच्छी तरह देख लिया है। और सम्यग्दृष्टि, अपने स्वभाव के भान में ज्ञान ऐसा हुआ है, कि जिस ज्ञान द्वारा लोक और अलोक को इस तरह देखा है, जैसे निर्मल जल के कुण्ड में मुख देखा जाता है। है न ? '**आलबाले मुखं**'। पानी में-जल में जैसे मुख देखता है, ऐसे अपने आत्मा में अपना भान होकर सम्यग्ज्ञान ऐसा हुआ (तो) लोकालोक का ज्ञान ख्याल आ गया। समझ में आया ?

कोई भी उसकी प्रतीति के बाहर रहा नहीं। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा अर्थ ठीक किया है। शीतलप्रसाद ने। थोड़ा-थोड़ा अर्थ ठीक किया है। कहीं-कहीं भूल की है। जहाँ व्यवहार आता है, वहाँ शीतलप्रसाद ने भूल की है। बराबर अर्थ, पूरा अर्थ सच्चा है नहीं। क्या कहते हैं? उसमें जो लिखा है, वह सब पूरा अर्थ सच्चा नहीं है। कोई-कोई में गड़बड़ है। यहाँ तो परीक्षा सत्य की है। समझ में आया? कोई-कोई जगह व्यवहार से निश्चय होता है, व्यवहार पहले आता है, ऐसा लिखा है। ऐसा है नहीं। तारणस्वामी से भी विरुद्ध होता है। शास्त्र से भी विरुद्ध हो जाता है। यहाँ तो सीधी निश्चय की बात कहते हैं। सेठ लोगों को मालूम नहीं, पण्डितों को प्रमाद में जाए। प्रमाद में। समझे? पण्डित के साथ प्रमाद मिलता है। भाई! यह मोक्षमार्ग की रीत है। उसकी गद्दी पर बैठना, उसका मार्ग चलाना, बड़ी जिम्मेदारी है। सेठ! देखो!

**'आलबाले मुखं यथा'** समझे? **'आलबाले'** अर्थात् पानी न? भाई! कुण्ड... कुण्ड... ठीक! **'आलबाले'** निर्मल पानी का कुण्ड। कुण्ड में ऐसे देखे तो मुख दिखे। ऐसे अपने दर्शन में सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दृष्टि को ही सम्यग्ज्ञान होता है। दृष्टि जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ ज्ञान ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़े तो भी अज्ञान है, पाखण्ड है, मिथ्यात्व है। समझ में आया? टीका करके भाई को भेजा है, ठीक किया है। ... आप एकबार देखो। समझ में आया? क्या है, देखना तो पड़ेगा या नहीं? सेठ के बाद आपकी बारी है।

लोक और अलोक का ज्ञान। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान में शंका बिल्कुल नहीं रहती। सब स्थिति का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। ऐसा लोकालोक का ज्ञान सम्यग्ज्ञान में-श्रुतज्ञान में (हो जाता है)। आहाहा! ... तत्त्व कैसा है, पर्याय कैसी है, क्या वस्तु है, सब आ गया। नौ तत्त्व में फेरफार होता नहीं। समझ में आया? विशेष बात है, अपने सार-सार कहते हैं। कौन-सी (गाथा) आयी? २२४। अब, २३६। बीच में मद्य का त्याग, इसका त्याग आदि की बात है, व्यवहार की बात है। सम्यग्दर्शन हो तो ऐसे ... त्याग, ... त्याग होता है राग में। २३६। २३६ देखो।

**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं, तीर्थं शुद्ध दृष्टितं।**
**ज्ञानमूर्ति सम्पूर्ण, स्वात्म दर्शन चिन्तनं ॥२३६॥**

देखो! तत्त्वार्थ श्रद्धान लिया, भाई! उमास्वामी का है। तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।

वह शब्द लिया है। मूल बात यह है। तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। व्यवहार समकित नहीं, हों! यह निश्चय है। उसमें थोड़ा व्यवहार लिखा है। निश्चय एक ही है। इसने अर्थ में दो डाला है। भूल है। सात तत्त्व का व्यवहार और निश्चयनय से यथार्थ श्रद्धान करना। वह भूल है। यहाँ भी कहा है कि जीवादि तत्त्व का सदा श्रद्धान करना, उसमें कोई विपरीत नहीं.. वह व्यवहार समकित है। निश्चय सम्यग्दर्शन सदा अपने से भिन्न है। दो लिया है। यहाँ तो एक ही समकित की बात है। समझ में आया? उसमें अर्थ में भी भूल है। वर्तमान चलता है, ऐसा उसमें लिख दिया है। पण्डितजी! यह याद करना। तत्त्वार्थ श्रद्धानं जो है, वह निश्चय समकित है। व्यवहार नहीं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री : 'तीर्थं शुद्ध दृष्टितं'**। उमास्वामी ने जो तत्त्वार्थ श्रद्धान कहा, वह यहाँ कहते हैं। उसका शब्द लेकर ही कहते हैं। तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। तत्त्वार्थ में आत्मज्ञान आ जाता है। समझ में आया? ओहोहो! तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तत्त्वार्थ क्या? सात। ऐसे नौ पदार्थ, ऐसे सात। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। प्रत्येक पर्याय कैसी-कैसी है और जीव कैसा है, सब यथार्थ एकरूप लिया है। सात तत्त्व का नाम एक लिया है। समझे? तत्त्वार्थ में। जीव, अजीव आदि तत्त्व। ऐसे लिया है न? भाई! सात तत्त्व का एकवचन लिया है। एकवचन है। यहाँ तो एकवचन, भेद नहीं। सात की भेद की श्रद्धा वह व्यवहार श्रद्धा। नौ तत्त्व की भेद श्रद्धा, वह व्यवहार है। यह बात यहाँ नहीं लेना है। उमास्वामी ने भी नहीं लिया है। उसका शब्द यहाँ डाला है।

**'दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं'**। तत्त्वार्थ का श्रद्धान करन सम्यग्दर्शन है। यह भवसागर से तिरने का जहाज (है)। देखो! जो व्यवहार समकित है, वह विकल्प है, वह तो पराश्रित व्यवहार है। व्यवहार भवसागर तिरने का उपाय है नहीं। व्यवहार पराश्रय, निश्चय स्वआश्रय। ये दोनों तो महा सिद्धान्त है। समझ में आया? कोई ऐसा कहे कि तत्त्वार्थ श्रद्धानं व्यवहार है। तो यहाँ कहते हैं कि **'तीर्थं शुद्ध दृष्टितं'**। उससे तो तीर्थ है। भवसागर तिरने का उपाय है। निर्विकल्प दृष्टि नहीं हो तो भवसागर तिरने का उपाय हो सकता नहीं। व्यवहार समकित है, वह तो विकल्प राग है। समझ में आया?

निश्चय और व्यवहार, दो प्रकार का समकित नहीं। समकित एक है। समकित का

कथन दो प्रकार का है। व्यवहार और निश्चय, कथन दो प्रकार का है। समकित दो प्रकार का नहीं है। समकित एक प्रकार का है। आहा! समझ में आया? कथन आये। अपना तत्त्वार्थ का भान ज्ञायकमूर्ति, राग की प्रतीत, भान हो गया (कि) स्वभाव में राग नहीं है, तो उसमें सातों तत्त्वों का भान आत्मा का भान होने से आ गया। उसमें नौ तत्त्व भेदयुक्त, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भगवान की वाणी की श्रद्धा, भगवान की श्रद्धा, यह सब विकल्प है, वह सब राग है, समकित नहीं। उसको निश्चय समकित के साथ ऐसा विकल्प देखकर व्यवहार समकित संसार तिरने का उपाय नहीं है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहा! कितना याद करना? बहुत फर्क हो गया अभी तो। इतना फर्क पड़ गया है कि वक्ता को तत्त्व की खबर नहीं। श्रोता को तो कहाँ से हो? जो कहते हैं, जय महाराज! डालचन्दजी! एक पुस्तक लेकर आये, बनाओ। सेठ बना दे। लाओ, पाँच हजार खर्चकर बना देते हैं। भले अन्दर जहर भरा हो। सेठ! जिसमें जैनदर्शन की क्या चीज़ है, उससे विरुद्ध लिखा हो। सेठ साहब! ऐसा एक पुस्तक है। हमने बनाया है। जाओ, छपवा लो। मालूम है तुम्हें, उसमें विपरीतता कितनी है? विपरीतता मालूम है? क्या कहते हैं? क्या कहा? देखा ही नहीं। चलो, छपवा दो। तुम्हारी मौजूदगी में कहते हैं। आप दोनों बैठे हो। गुप्त बात तो है नहीं।

देखो! तारणस्वामी कैसे स्पष्ट बात कहते हैं! तत्त्वार्थ श्रद्धान दर्शनं। यदि कोई उसे व्यवहार कहे, तो '**तीर्थं शुद्ध दृष्टितं**'। शुद्ध दृष्टि और तिरनेवाला। दो बोल लिये। भाई! शुद्ध दृष्टितं, दृष्टिमय शुद्ध दृष्टि है, ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? डालचन्दजी! थोड़ा ओलम्भा सुनना पड़े, क्या करे? तारणस्वामी तो अकेली अध्यात्म दृष्टि और जिन-जिन की ही पुकार है। उसकी बात अन्य के साथ एक अक्षर मिलती नहीं। समझ में आया? सम्प्रदायवाले जो व्यवहार से निश्चय, व्यवहार से निश्चय (कहते हैं), उसके साथ मिलती नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**' यह भवसागर से तिरने का तीर्थ (है)। सीधा शब्द है न? भाई! पण्डितजी! या '**तीर्थं शुद्ध दृष्टितं**' अलग है निश्चय? ऐसा नहीं है। उसके साथ सम्बन्ध है। मुझे दूसरा कहना है। कोई ऐसा कहे कि, '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**' व्यवहार और '**तीर्थं शुद्ध दृष्टितं**' निश्चय। ऐसा नहीं है। दो भाग ही नहीं है

उसमें। समझ में आया? समझने की चीज़ है। मूल बात (है)। '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**' और कोई उसमें ऐसा निकाले कि '**दर्शनं तीर्थं शुद्ध**' निश्चय। ऐसा हे नहीं। '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**'। जैसे भगवान ने सात (तत्त्व) कहे, ऐसा अपने आत्मज्ञान में सातों का भान अन्तर में प्रतीत में आना, अनुभव में आत्मा आना उसका नाम तत्त्वार्थ श्रद्धान है। तत्त्वार्थ श्रद्धान में आत्मज्ञान आ जाता है, आत्मज्ञान में तत्त्वार्थ श्रद्धान आ जाता है। दोनों एक बात है। आहाहा!

'**तीर्थं**' और वह भवसागर से तिरने का तीर्थ है, जहाज है। क्या व्यवहार समकित? विकल्प तो पराश्रित है, व्यवहार पराश्रित है। निश्चय स्वाश्रित। यह तो महासिद्धान्त त्रिकाल का है। तो व्यवहार समकित नो तत्त्व का तत्त्वार्थ श्रद्धान, वह संसार तिरने का जहाज है? बिल्कुल नहीं। व्यवहार समकित बन्ध का कारण है, विकल्प है। वह बात यहाँ है ही नहीं। समझ में आया? देखो! यह श्रावकाचार की बात चलती है। इसलिए पहले श्रावकाचार लिया, बाद में ज्ञान समुच्चयसार लिया था। पिछले साल लिया था न? ... इस बार श्रावकाचार आ गया। आये वह आये। दिमाग में ये आया कि इसे लो। लिखा तो सबमें है। सार-सार गाथा लेते हैं। सब पुस्तक में से। समझ में आया? लाल अक्षर से लिखा है, देखो! हमारे पास लाल शीश पैन रहती है, हों! शीश पैन लाल रहती है।

यही शुद्ध दृष्टिमय है। भाई! ऐसे लिया है, देखो! क्या कहा? जो तत्त्वार्थ श्रद्धानं आत्मज्ञानपूर्वक नौ तत्त्व का, सातों तत्त्वों का अन्दर भान हुआ है, वह शुद्ध दृष्टिमय है, व्यवहार समकित अशुद्ध है, उपचार है, व्यवहार है, निमित्त है। वह नहीं। उसकी बात यहाँ नहीं है। ठीक, उतरता तो है। एक बार सुनेंगे और व्याख्यान चलता है उसमें से ... कि ऐसा कहते हैं, ऐसा है। समझ में आया?

ज्ञानमूर्ति। भाई! यह लिया। देखा! एक तत्त्वार्थ श्रद्धान निश्चय सिद्ध करने को कितने शब्द लिये हैं! कोई उसमें से व्यवहार निकाले तो वह सिद्ध नहीं होता है। ज्ञानमूर्ति। अकेला ज्ञान, स्वसंवेदनज्ञान। शास्त्र का ज्ञान नहीं, शास्त्र का ज्ञान विकल्पात्मक है। यहाँ तो तत्त्वार्थ स्वभाव की श्रद्धा हुई, अनुभव प्रतीत में आत्मा आया, सर्वज्ञ जैसा आया तो ज्ञानमूर्ति (आया)। पूरा ज्ञानस्वरूप मैं हूँ, ऐसा वेदन हो गया। ज्ञान का स्वसंवेदन होना, उसमें ज्ञानमूर्ति आया। सम्यग्ज्ञान कहा। निश्चय समकित, ज्ञान है। समकित भी निश्चय

है, ज्ञान भी निश्चय है। समझ में आया? लोग कहते हैं न कि, व्यवहार समकित है, वहाँ निश्चय ज्ञान कैसे है? ज्ञान भी व्यवहार और आचरण भी व्यवहार, ऐसा कहते हैं। अभी आया। हमारा बाहर आने के बाद। नहीं तो सब ऐसे ही पड़े थे। हलमहला, चलमचला। ईश्वरचन्दजी! बहुत गड़बड़ी चली है। पहले तत्त्वार्थ श्रद्धानं व्यवहार है। व्यवहार श्रद्धान में निश्चय ज्ञान कहाँ से आया? इसलिए व्यवहार ज्ञान है। साथ में आत्म व्यवहार तीनों मोक्ष का मार्ग (है), उससे निश्चय पायेगा। ऐसा पत्रों में बहुत आता है। सब झूठ बात। समझ में आया? ...चन्दजी! आता है या नहीं वहाँ? वहाँ हमारे पास तो पत्र बहुत आते हैं।

यही शुद्धदृष्टिमय है और यही ज्ञानमूर्ति है। अपने सर्व गुणों से पूर्ण है। देखो! अनन्त गुण से दृष्टि में पूर्ण है। पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण। अकेला शुद्ध आत्मा। और अपने ही आत्मा का दर्शन। देखो! '**स्वात्म दर्शन चिन्तनं**', देखो! '**स्वात्म दर्शन चिन्तनं**'। दो प्रकार नहीं, एक ही बात सबमें है। चारों पद में अकेले निश्चय समकित की बात की है। समझ में आया? बहुत गाथा (अलौकिक है)। लोग भी पढ़ते हैं, उसमें भी गड़बड़ करते होंगे। मालूम नहीं है कि तत्त्वार्थ श्रद्धान क्या है। कल एक भाई कहते थे, आपके हैं न? सांगली.. सांगली कहाँ है आपका गाँव? सांगली। समझे नहीं तो क्या करे? हम पहले ऐसा नहीं सुनते थे, दूसरा सुनते थे। है कहाँ तो सच्चा सुनावे? सब गड़बड़ ही गड़बड़ चलती है। बराबर है? पण्डितजी! यह तो जानने की बात है। आहाहा..!

भगवान! तेरी चीज़ सत्य क्या है और शास्त्र में क्या कहा है, उसकी समझ बिना विपरीत अर्थ और उल्टा अर्थ निकाले बिना रहे ही नहीं। समझ में आया? वह तो अपने आ गया था न? अर्थ-अनर्थ। नहीं? एक श्लोक में आ गया। एक श्लोक में आया था। अर्थ का अनर्थ। जैसा शास्त्र अर्थ कहते हैं और भाव ऐसा है, ऐसा समझे बिना अर्थ का अनर्थ करे। कहा था, यशोविजय का कहा था, 'जाति अंधनो दोष नहीं..' आँख से अन्धा है तो बेचारा कुछ देखता नहीं। 'जाति अंधनो दोष नहीं, .. जाने नहीं अर्थ, पण मिथ्यादृष्टि तेथी आकरो, करे अर्थना अनर्थ।' डालचन्दजी! कड़क बात है, हों! अकेले व्यवहार को माननेवाले को तो चोट लगती है। विरोध हो गया। अभी भी विरोध करते हैं। तत्त्व को समझते नहीं है, क्या कहा।

कितने बोल लिये हैं इसमें, देखो! '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**' वही तत्त्वार्थ श्रद्धान।

निश्चय सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में। वही '**तीर्थं शुद्ध दृष्टितं**' वही शुद्ध सम्यग्दर्शन, वही भवसागर तरने का उपाय, वही '**ज्ञानमूर्ति सम्पूर्ण**' सम्पूर्ण ज्ञान का देखनेवाला, माननेवाला। और '**स्वात्म दर्शन चिन्तनं**'। अपने आत्मा का दर्शन और चिन्तन अर्थात् अनुभव। देखो! एक गाथा में उमास्वामी ने कहा था तत्त्वार्थ श्रद्धान, वर्तमान में लोग उसको व्यवहार समकित कहते हैं। इसलिए पूरे अर्थ में बहुत भूल हो गयी। समझ में आया? ऐसा है नहीं। क्या मोक्षमार्ग है तत्त्वार्थश्रद्धा या बन्धमार्ग है? व्यवहार समकित तो आस्रव है, विकल्प है। वह तत्त्वार्थश्रद्धा व्यवहारमोक्षमार्ग है? ... अर्थ में पहले से कह दिया है, तत्त्वार्थ श्रद्धान व्यवहार समकित और आत्मा का ज्ञान निश्चय समकित। लेकिन दोनों एक है, सुन तो सही। तत्त्वार्थ तो भेदवाला तत्त्वार्थ श्रद्धान हो तो व्यवहार है। परन्तु जहाँ अभेद तत्त्वार्थ श्रद्धान एक स्वरूप का भान करके आत्मा का ज्ञान साथ में हुआ, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

अपने सर्व गुणों से पूर्ण ऐसा आत्मा। अपने ही आत्मा का दर्शन। ऐसा पूर्ण प्रभु उसका अनुभव, तीनों ले लिया। कौन तीन? पहले तो ऐसे लिया कि तत्त्वार्थ (श्रद्धानं) सम्यग्दर्शनं, वह भवसागर तिरने का उपाय लिया। बाद में तीन लिया। वही शुद्ध दृष्टिमय है-एक। वही ज्ञानमूर्ति है-दो। वह सर्व गुणों से पूर्ण का अनुभव करता है-आचरण। यह तीनों लिये। दर्शन, ज्ञान और चारित्र। समझ में आया? '**ज्ञानमूर्ति सम्पूर्ण, स्वात्म दर्शन चिन्तनं**।' यह अनुभव लिया, आचरण लिया। दर्शन का आचरण, ज्ञान का आचरण, स्वरूप का आचरण-स्थिरता, उसका नाम मोक्ष का मार्ग और भवसागर तिरने का वह तीर्थ है। बाकी सब बाह्य का व्यवहार तीर्थ है। शुभभाव होता है तो यात्रा आदि का भाव हो। होता है, परन्तु वह भवसागर से तिरने का कारण है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** साधन तो है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** साधन-फाधन है नहीं। वह तो धर्मी जीव को पूर्ण वीतराग न हो, तब ऐसा भगवान का प्रतिमा का, वाणी का, यात्रा का शुभभाव होता है। होता है, नहीं हो -ऐसा नहीं है। परन्तु वह भाव पाप से बचने को पुण्यभाव जितनी कीमत है। सेठ! उसकी कीमत कोई संवर, निर्जरा में डाल दे (तो) बड़ी विपरीत दृष्टि है। समझ में आया? २३६ हो गयी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

७

आसोज शुक्ल १३, सोमवार, १९-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार, गाथा-२३७, २४२,
२४५, २४६, २४७, २४८, २५० से २५२, २६२, २६६, २७२, प्रवचन - २४

.... गाथा चलती है। २३७। गाथा - २३७। कल २३६ चल गयी।

**दर्शनं सप्त तत्त्वानां, द्रव्य काय पदार्थकं।**
**जीव द्रव्यं च शुद्धं च, सार्थं शुद्ध दर्शनं॥२३७॥**

देखो! पहले श्रावक को सम्यग्दर्शन शुद्ध होना चाहिए। सम्यग्दर्शन में सप्त तत्त्व- जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। ये सात पदार्थ, सात तत्त्वों की बराबर श्रद्धा होनी चाहिए। वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सात तत्त्व की... समझ में आया? सात तत्त्व की श्रद्धा, वह भेदवाली श्रद्धा है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

'**दर्शनं सप्त तत्त्वानां**' सात भिन्न-भिन्न तत्त्व जैसे हैं, वैसा श्रद्धान करना, उसको व्यवहार समकित अर्थात् कि वास्तविक समकित नहीं, (कहने में आता है)। परन्तु जिसको अपना शुद्ध आत्मा.. है न? '**जीव द्रव्यं च शुद्धं च, सार्थं शुद्ध दर्शनं**'। जिसको आत्मा शुद्ध ज्ञायक परिपूर्ण आनन्द (स्वरूप है), ऐसी अन्तर की दृष्टि निर्विकल्प श्रद्धा, भान हुआ हो, यथार्थ शुद्ध दर्शन वह है। यथार्थ सम्यग्दर्शन वह है। पण्डितजी! थोड़ा व्याख्यान हो गया है पहले। यह सातवाँ आया है आज, पहले एक हो गया है। ऐसे ... हो गया। कल एक बाकी है आपकी विनन्ती में। पण्डिती विनन्ती है न। ... समझ में आया? उसमें कैसे अर्थ होता है? उसमें क्या है उसे पहले समझना चाहिए।

यहाँ एक गाथा में दो बात ली है। '**दर्शनं सप्त तत्त्वानां**'। अभी सात तत्त्व क्या है उसकी खबर नहीं हो। अजीव अजीव की क्रिया करते हैं, दया, दान का परिणाम पुण्य है, हिंसा, झूठे का भाव पाप है, आत्मा ज्ञायक भिन्न है।

**मुमुक्षु :** इसमें ऐसा कहाँ आता है, इसमें सात तत्त्व...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या आया?

**मुमुक्षु :** नाम जान लिये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नाम जाना? सात तत्त्वानां-सात भाव। सात भाव। आत्मा ज्ञायक चैतन्य है और आत्मा की पर्याय में दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, वह पुण्य है। हिंसा, झूठ, चोरी पाप है। दोनों मिलकर आस्रव है। आत्मा का स्वभाव राग में रुकता है उतना भावबन्ध है। कर्म, शरीर आदि की क्रिया अजीव है। वह अपने से होती नहीं। और अजीव कर्म से मेरे में आस्रव, विकार होता नहीं। ऐसे सात तत्त्व की भेदपूर्वक श्रद्धा करना, उसका नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन है। अर्थात् वह सम्यग्दर्शन सच्चा नहीं है। समझ में आया?

और द्रव्य—छह द्रव्य। दूसरा बोल है न? पण्डितजी! छह द्रव्य। भगवान सर्वज्ञदेव ने छह द्रव्य कहे। द्रव्य के नाम भी नहीं आते हो। ...लालजी! छह द्रव्य किसको कहते हैं? भगवान जाने। आते हैं नाम? नहीं। स्पष्ट बात करते हैं। डालचन्दजी! छह द्रव्य के नाम आते हैं या नहीं? नहीं आते हो तो कोई बात नहीं। अभी तक नहीं सीखा, इतनी उम्र हो गयी। अब सीखना। उसमें क्या? सात तत्त्व.. सबकी भिन्न-भिन्न व्याख्या है, हाँ! भिन्न-भिन्न की श्रद्धा करनी, उसका नाम व्यवहार समकित अर्थात् शुभराग है। और छह द्रव्य। छह द्रव्य है न? उसमें द्रव्य है न? छह द्रव्य अर्थ में लिखा है। छह द्रव्य। अनन्त आत्मा, वह जीवद्रव्य। ऐसे असंख्यात ... अनन्त परमाणु पुद्गल द्रव्य और धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। ऐसे छह द्रव्य अनादि-अनन्त भगवान के ज्ञान में आये हैं। छह द्रव्य को छह द्रव्यरूप यथार्थपने श्रद्धा करना, वह व्यवहार समकित अर्थात् शुभराग है। शुभराग है। निश्चय समकित और धर्म नहीं। समझ में आया? जिसको इतना भी ठिकाना नहीं है, सात तत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं, छह द्रव्य क्या है (खबर नहीं)।

काय-पंचास्तिकाय। उसमें काल निकाल दिया। काल में अस्ति है परन्तु काय नहीं। पंचास्तिकाय। काल है, असंख्य अणु है चौदह ब्रह्माण्ड में। एक-एक अणु में कालाणु में अनन्त-अनन्त गुण है। ऐसे असंख्य अणु पूरे लोक में एक-एक आकाश प्रदेश

में रहे हैं। काल की अस्ति है, परन्तु समुदाय के रूप में काय नहीं है। उसके सिवा पाँच काय (हैं)। जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय। ये पाँच काय जैसे हैं, ऐसी श्रद्धा करना, वह शुभरागरूपी व्यवहार समकित है। किसको? जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन होता है उसको। समझ में आया?

पदार्थ – नौ पदार्थ है। देखो! सात तत्त्व, छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थ। नौ पदार्थ। सात में से आस्रव में से दो निकाले। पुण्य और पाप। नौ पदार्थ। भिन्न-भिन्न नौ हैं। पुण्य, पाप नहीं, पाप, पुण्य नहीं, आस्रव दो मिलकर भिन्न है, बन्ध भिन्न है, अजीव भिन्न है, कर्म भिन्न है, आत्मा ज्ञायक भिन्न है, संवर-निर्जरा पर्याय अपनी शुद्धि, वह भिन्न है। पुण्य-पाप के परिणाम से, संवर-निर्जरा आत्मा के स्वभाव से उत्पन्न हो, वह भिन्न है। ऐसे नौ की नौ रूप भेदरूप श्रद्धान करना उसका नाम शुभराग, शुभ विकल्प, व्यवहार समकित कहते हैं। किसको?

'**जीव द्रव्यं च शुद्धं च, सार्थं शुद्ध दर्शनं।**' जिसके साथ जो ज्ञायक चिदानन्द निर्विकल्प शुद्ध आत्मा, वह राग की क्रिया करनेवाला नहीं, दया, दान आदि व्यवहार विकल्प का कर्तृत्व नहीं। सात तत्त्व द्रव्य आदि कहे, विकल्प, उसका भी कर्तृत्व जिसमें नहीं है। ऐसे अकेला आत्मा '**सार्थं शुद्ध**' यथार्थ '**शुद्ध दर्शनं।**' उसको यथार्थ शुद्ध दर्शन अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? यह तो वहाँ बहुत परिचय में आते थे। सम्प्रदाय में आते थे या नहीं? क्या कहना?

देखो! एक गाथा में दो लिया है। समझ में आया? पहले में व्यवहार लिया। दूसरे में निश्चय लिया। (जिसको निश्चय हो), उसको नौ तत्त्व आदि का व्यवहार समकित कहने में आता है। सम्यक्। दो प्रकार का सम्यग्दर्शन का कथन है। सम्यग्दर्शन दो नहीं है। कथन में दो है। तो एक प्रकार पहले लिया, दूसरा प्रकार दूसरे पद में लिया। जिसको जीवद्रव्य शुद्धं ज्ञायक अखण्ड निर्विकल्प राग—विकल्प का कर्ता नहीं, देह की क्रिया का कर्ता नहीं। ये तो सात तत्त्व में आ गया। लेकिन यहाँ निर्विकल्प आत्मा में शुद्ध आत्मा का अनुभवपूर्वक प्रतीति, भान होना, वह यथार्थ शुद्ध दर्शन है। यथार्थ कहो या निश्चय कहो। '**सार्थं**' है न? '**सार्थं**'। यथार्थ कहो या निश्चय कहो। जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन होता

है, उसको ऐसा व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है। निश्चय बिना का अकेला व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। उसमें कोई व्यवहार समकित का आरोप भी देने में आता नहीं। समझ में आया? अभी सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं, (उसकी) खबर नहीं और कहाँ से व्रत, नियम और क्रियाकाण्ड आ गया? वह कहते हैं, देखो! २३७ में आया न? सार-सार लेते हैं। २४५। २४५ है न?

**अनृतं अचेत उत्पादं, मिथ्या माया लोकरंजन।**
**पाषंडी मूढ विश्वासं, नरये ते पतंति नरा॥२४५॥**

कड़क भाषा है, सेठ! तारणस्वामी कड़क हैं, कड़क। यथार्थ हो, वह तो कहना ही पड़े। उसमें क्या? लोक में क्या... ? इसलिए कहते हैं, देखो! लोकरंजन। लोगों का रंजन करने में अनुकूलता पड़े ऐसी बात करना, वह पाखण्डी मूढ़ है। '**नरये ते पतंति नरा।**' वह नरक में जाएगा। लोकरंजन-लोगों को अनुकूल (पड़े, ऐसा कहना कि), दया, दान, भक्ति, व्रत, तप वह भी एक धर्म है। वह तो विकल्प है। वह भी धर्म है, ऐसा मानते हैं, मनाते हैं, लोगों को प्रसन्न रखते हैं, वह '**नरये ते पतंति**' नरक में जाएगा। क्योंकि भगवान के मार्ग से विरुद्ध द्रोह करते हैं। समझ में आया? वह बाद में आयेगा। २४७ में आयेगा। समझ में आया? है शब्द? डालचन्दजी! है? देखो! '**अनृतं**' बाद में आयेगा, अभी २४५ की व्याख्या चलती है।

'**अनृतं**' मिथ्यात्व, अज्ञान को ही उत्पन्न करनेवाले हैं। मिथ्याश्रद्धा, उल्टी मान्यता। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर से एक भी शब्द का विरोध कहे, एक अक्षर का लोकन्यास से करे, ऐसा मिथ्यात्व अज्ञान को उत्पन्न करनेवाले। और स्वयं मिथ्यादृष्टि, मायाचार और लोगों को रंजायमान करने में लगे रहते हैं। सेठ को, सबको अनुकूल लगाना। पैसेवाले हो, भैया! तुम तो पैसे खर्च करो। तुम्हें उसमें धर्म है। श्रावक का पूजा, दान में धर्म है। मुनियों का दूसरा धर्म है। ऐसे दुनिया को रंजन करनेवाला '**नरये ते पतंति**' नरक में जाएगा। डालचन्दजी! लिखा है '**नरये ते पंतति**'? मानव नरक में पड़ता है। पंचेन्द्रिय का महादुःख है। लोगों का रंजन करे, परन्तु भगवान की आज्ञा से विरुद्ध होता है, उसकी खबर नहीं। सबको भला मानना और सबको अच्छा कहना। सेठ को मक्खन लगाना। मक्खन लगाना समझते हो? चापलूसी। तुम बड़ हो, बड़े धर्मी हो। धूल में भी भान नहीं है। पैसेवाला हो

गया तो क्या धर्म हो गया? पाँच-पचास लाख खर्च करे तो धर्म हो गया? वह तो धूल है। वह तो कदाचित् राग मन्द किया हो तो पुण्य है। धर्म-बर्म है नहीं। मन्दिर दो बनाया तो, ओहोहो! तुम बड़े धर्मी हो।

एक पण्डित ने कहा था। राजकोट का ढाई लाख का मन्दिर हुआ न? (संवत्) २००६ की साल में। एक पण्डित आया था। बड़ा महोत्सव था। पाँच-छह हजार लोग आये थे। राजकोट में मन्दिर हुआ था। एक पण्डित ने हमारे सेठ को कहा, तुम्हारे दादा को-नानालालभाई (को)। नानालालभाई को कहा था, सेठ! ... इतना खर्च (किया), सवा लाख तो उसने खर्च किया, सवा लाख, तुम सात-आठ भव में मोक्ष जाओगे। सेठ ने कहा, हमारे महाराज ऐसा नहीं कहते हैं। हम ऐसा नहीं मानते। हमारे नानालालभाई थे न? यह मोहनभाई का पुत्र है, उसका बड़ा भाई। नानालालभाई को एक पण्डित ने कहा, २००६ की साल। बड़ा महोत्सव, ढाई लाख का नया दिगम्बर का मन्दिर (बना)। यहाँ काठियावाड़ में तो दिगम्बर मन्दिर था ही नहीं। एक वहाँ भावनगर था और एक जूनागढ़ था। ओहो! ऊपर सुवर्ण कलश। सेठ! तुम सात-आठ भव में मोक्ष जाओगे। हमारे महाराज ना कहते हैं। उससे मोक्ष हम तो नहीं मानते। हमारा जितना शुभभाव हुआ हो, उतना हमको पुण्य बँध जाएगा। सेठ! जितना हमारा राग मन्द हुआ हो, (उतना पुण्य बन्ध है)। कान्तिभाई है न? उसके पिताजी थे। तीनों भाई बहुत यहाँ (आते थे)। एक ही वर्ष में तीनों चल बसे। हमारे यहाँ ... था। मोहनभाई उसके पिताजी तो हमारे साथ में थे। बहुत प्रेम था। बहुत प्रेमी था। साथ में रहते हैं। तुम भी साथ में थे। साथ में थे। उसने कहा कि, नहीं। लाख, सवा लाख खर्च किया तो क्या आठ भव में मोक्ष जाते हैं? कौन कहता है?

ऐसा मूढ़ मिथ्यादृष्टि दुनिया को रंजन कराने को ऐसे पाँच लाख-दस लाख खर्चे तो तुम्हारे धर्म होगा, (ऐसा) लोकरंजन करके भगवान की आज्ञा का लोप करते हैं। समझ में आया? पण्डितजी! कड़क बात है, हों! वह तो शास्त्र में है।

**मुमुक्षु :** कड़क नहीं है, सच्ची है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसी है, ऐसा है।

**'पाषंडी मूढ विश्वासं'** देखो! पाखण्डी साधुओं का विश्वास करते हैं। ऐसी

विपरीत मान्यता करनेवाला कोई भी गृहस्थ हो, उसका विश्वास करते हैं। देखो! उसका विश्वास करते हैं विपरीत मान्यता कहनेवाला। पुण्य में धर्म है, क्रिया करते-करते तुम्हें धर्म हो जाएगा, ऐसा यदि कोई मनाता है और ऐसा विश्वास करता है, ऐसा विश्वास करनेवाला मानव नरक में जाता है।

**मुमुक्षु :** विश्वास करनेवाला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या है? '**पाषंडी मूढ विश्वासं, नरय ते पतंति नरा।**' डालचन्दजी! पहले समझना। पहले चीज़ क्या है? महान प्रभु का मार्ग, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ उससे एक विरुद्ध... अभी तो बहुत विरोध विरोध (चलता है)। खबर भी नहीं है कि विरोध करते हैं या नहीं। समझ में आया?

इसलिए यहाँ लिया है, ऐसी मिथ्या माया, मिथ्या श्रद्धा। अन्दर मायाचार, दुनिया को धर्म मनाने अन्दर में कुछ माने, बाहर में कुछ माने और लोक का रंजन। लोकरंजनं। '**पाषंडी मूढ विश्वासं**' ऐसा का कोई भी विश्वास करे, वह भी धर्म का कहनेवाला है, वह भी धर्मी है, वह भी एक विद्वान है, ऐसा मानकर उसका विश्वास करे, '**नरये ते पतंति**' विश्वास करनेवाला नरक में जाएगा। है भैया उसमें? २४६।

**पाषंडी वचन विश्वासं, समय मिथ्या प्रकाशनं।**
**जिन द्रोही दुर्बुद्धि, ये स्थानं तस्य न जायते॥२४६॥**

क्या कहा? देखो! अपने को खबर नहीं तो दूसरे में क्या खबर है उसको कि क्या चीज़ है। तो कहते हैं, पाखण्डी जीवों के वचनों का विश्वास करना। भान है नहीं और जहाँ-तहाँ धर्म के नाम पर विपरीत बात चलाये, ऐसा साधु हो या गृहस्थ हो, कोई भी। साधु का नाम पाखण्डी ... सच्चे साधु हो तो भी उसे पाखण्डी कहे। पाखण्डी अर्थात् ... ऐसा नहीं। समयसार में आता है।

यहाँ कहते हैं, गृहस्थ हो या विद्वान हो या त्यागी नाम धरानेवाला हो या साधु हो। पाखण्डी साधुओं के वचनों का विश्वास करना, ये महा जिनद्रोही है। ऐसा विश्वास करनेवाला भगवान के मार्ग का द्रोही है। है? जिनद्रोही। वह दुर्बुद्धि है। उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं है, अज्ञान बुद्धि है। दुर्बुद्धि कहो या अज्ञान हो। मिथ्या आगम के मत का

प्रकाश करना है। देखो! '**समय मिथ्या प्रकाशनं**' समय अर्थात् आगम। आगम का मिथ्या प्रकाश। वास्तविक आगम क्या है, उसका अर्थ क्या है, समझे बिना अपनी कल्पना से उल्टा आगम का अर्थ चला दे और मिथ्या आगम की परम्परा चला दे। जिनद्रोही ऐसे पाखण्डी साधु जिनेन्द्र के अनेकान्त मत के शत्रु हैं। लिखा है? इसमें लिखा है। भैया! लिखा है उसमें? शीतलप्रसाद ने लिखा है, हों! शीतलप्रसाद हुए हैं न? एक ब्रह्मचारी।

**मुमुक्षु :** उसको तो मालूम है न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मैं तो दूसरे को समझाने को कहता था। समझ में आया? समझ में आया कि नहीं? शीतलप्रसाद दिगम्बर ब्रह्मचारी हुए हैं न। उन्होंने यह अर्थ लिखा है। है तारणस्वामी का पाठ। उसमें है, पाठ में ही है।

'**जिन द्रोही दुर्बुद्धि**' जिसको भगवान आत्मा भिन्न, राग से भिन्न, आस्रव से भिन्न, जड़ की पर्याय से भिन्न (उसका) भान नहीं है और भगवान के आगम के नाम पर चढ़ा दे कि आगम ऐसा कहते हैं, शास्त्र ऐसा कहते हैं, ऐसा जिनद्रोही और मिथ्या दुष्ट बुद्धि रखनेवाला '**स्थानं तस्य न जायते**' क्या (कहते हैं)? उसके स्थान में न जाना। है न? '**स्थानं तस्य न जायते**।' भान नहीं है, जहाँ-तहाँ जाना।

**मुमुक्षु :** बिना भान के गड्ढे में जाए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात सच्ची है। है या नहीं? भैया! '**स्थानं तस्य न जायते**' जिसकी प्ररूपणा, श्रद्धा विरुद्ध है, आगम से विरुद्ध है.. समझे? उसके वचन का विश्वास करना या मिथ्या प्रकाशन करते हैं, उसका '**स्थानं तस्य न जायते**।' ऐसे पाखण्डी साधु के स्थान में जाना भी उचित नहीं। उसका संग करना नहीं, शोहबत करना नहीं, उसकी विपरीत रीत में चढ़ा देगा। उसकी दृष्टि विपरीत है। आगम का अर्थ वह विपरीत करते हैं, उसे विपरीत रास्ते पर चढ़ा देगा। समझ में आया? बहुत लिखा है। '**स्थानं तस्य न जायते**।'

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वह तो ईश्वरचन्दजी स्पष्ट कराते हैं। भैया! ... नहीं है, ऐसी वस्तु की स्थिति है। वस्तु की मर्यादा है। भगवान त्रिलोकनाथ

अरिहन्त, गणधर जो कहे उसके नाम पर चढ़ाकर उल्टा चलाना, कहते हैं कि वह तो '**नरय ते पतंति**।' और उसका विश्वास करनेवाला भी नरक में जाएगा। और '**स्थानं तस्य न जायते**' उसका संग करना नहीं। धर्मीजीव को ऐसे संग में, परिचय में नहीं जाना। नहीं तो वह उल्टे रास्ते पर चढ़ा देगा। समझ में आया? अब, २४७।

**पाषंडी कुमति अज्ञानी, कुलिंगी जिन उक्तं लोपनं।**
**जिनलिंगी मिश्रेन य, जिन द्रोही ज्ञान लोपनं॥२४७॥**

'**मिश्रेन**' शब्द है? '**मिश्रेन**' शब्द है न? जिनलिंगी के साथ अपने को मिलाने को, जिनलिंगी दिखाने के लिये। आप लोग, पण्डित लोग कहते हैं, ... नहीं? बुद्धिवाला है, दूसरे से कुछ अधिक बुद्धिवाला है। तो थोड़ा उसे यथार्थ समझना चाहिए, वाँचन करना चाहिए। एक-एक शब्द में गाथा में क्या मूल में कहा है, ऐसे यथार्थ न चले तो तारणस्वामी का ही द्रोही हो जाता है। तारणस्वामी के नाम से चलावे और हो तारणस्वामी का दूसरा कथन और माने दूसरा। डालचन्दजी! ये जिनद्रोही हुआ, साधु द्रोही हुआ, गृहस्थी समकिती का द्रोही होगा। समझ में आया?

पाखण्डी साधु कुमति और कुश्रुत का धारी है। सम्यग्ज्ञान है नहीं। सम्यक् श्रुत है नहीं। उल्टा कल्पना और तर्क अपना लगाकर—कुशास्त्र है। मिथ्या ... है, भेष भी दूसरा है। भेष भी दूसरा नाम कल्पना दूसरी है। जिन के स्वरूप को लोपनेवाला है। वीतराग परमात्मा, उसका निश्चय सत्य मार्ग उसका लोपनेवाला है। जो जिनलिंगी अपने में थोड़ा मिलाकर, थोड़ा ऐसा, थोड़ा ऐसा (कहता है, वह) जिन भगवान का द्रोही होता है। सम्यग्ज्ञान को छिपा देनेवाला है। लोप का अर्थ। इसलिए उसका संग करना नहीं। उसकी पहले परीक्षा करनी चाहिए। कहो, समझ में आया? २४८।

**पाषंडी उक्त मिथ्यात्वं, वचनं विश्वास क्रियते।**
**त्यक्तते शुद्ध दृष्टी, दर्शनं मल विमुक्तयं॥२४८॥**

पाखण्डी भेषी साधुओं द्वारा कहे हुए मिथ्यात्व पोषक वचनों का विश्वास किये जाने पर शुद्ध आत्मिक सुदृष्टि का त्याग हो जाता है। यहाँ तो साधु का नाम है, परन्तु कोई भी गृहस्थ हो, अज्ञानी हो,...

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस, '**उक्त मिथ्यात्वं**।' वही भाषा उसमें थी न? पाखण्डी मिथ्यात्व।

परन्तु विपरीत मान्यतावाला। वास्तविक तत्त्व भगवान सर्वज्ञदेव कहे, एक रजकण की भी क्रिया आत्मा कर सकता नहीं। एक राग दया, दान का उसका कर्तृत्व मानना, वह भी मिथ्यात्व है। उससे विरुद्ध कहनेवाला अज्ञानी मिथ्यात्व का पोषक है। '**वचनं विश्वास**' उसके वचन का विश्वास करना,.. समझ में आया? '**तस्य ये सुदृष्टि**' सुदृष्टि हो तो भी नाश हो जाती है। समझ में आया? सच्ची दृष्टि रहती नहीं। '**दर्शनं मल विमुक्तं**' तो कैसा करना? उसको मलरहित सम्यग्दर्शन नहीं रहता। ऐसी श्रद्धा-विपरीत माननेवाले की श्रद्धा करे, बहुमान करे, भक्ति करे तो उसको सच्चा सम्यग्दर्शन रह सकता नहीं।

**मुमुक्षु :** कृपा से फल हो जाए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल में भी कृपा से फल होता नहीं। क्या कृपा से फल होता है? २५०।

**ज्ञानं तत्त्वानि वेदंते, शुद्ध समय प्रकाशकं।**
**शुद्धात्मनं तीर्थ शुद्धं, ज्ञानं ज्ञान प्रयोजनं ॥२५०॥**

देखो! '**ज्ञानं तत्त्वानि वेदंते**' जीवादि सात तत्त्वों का ज्ञान करके आत्मा का यथार्थ अन्दर अनुभव करना-वेदन करना। सात का ज्ञान सम्यक् चैतन्य की ओर झुकने से होता है। और उससे ज्ञान का वेदन करना, अनुभव करना। निर्विकल्प शान्ति, सम्यग्दर्शन का वेदन करना। समझ में आया? और '**शुद्ध समय प्रकाशकं**।' शुद्ध निर्दोष ... प्रकाशक हो। समझ में आया? शुद्ध निर्दोष पदार्थ कहते हैं और शुद्ध तत्त्व का प्रकाश कहते हैं। '**शुद्धात्मनं तीर्थ**' ऐसा शुद्ध तीर्थस्वरूप शुद्धात्मा का झलकानेवाला हो। ऐसे ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। शुद्ध तीर्थस्वरूप आत्मा है। बाह्य तीर्थ व्यवहार है। समझ में आया? बाह्य तीर्थ व्यवहार है। ... मोक्ष का कारण है और उससे क्रम से मोक्ष होगा, ऐसा नहीं है। समझ में आया? लोग कहते हैं न, जाओ भैया! सम्मेदशिखर का दर्शन करो, भव का नाश हो जाएगा। शत्रुंजय का, गिरनार का। भगवान ना कहते हैं कि हम ऐसा कहते नहीं। हमारी

वाणी में ऐसा आया नहीं। शुभबन्ध होता है, पुण्यबन्ध का कारण तीव्र कषाय से बचने को ऐसा शुभभाव ज्ञानी को भी होता है। परन्तु शुद्ध तीर्थ अपने स्वरूप का झलकानेवाला ज्ञान, चिदानन्द ज्ञान, ज्ञायकस्वभाव का प्रकाश करनेवाला, वही ज्ञान शुद्ध तीर्थ है। समझ में आया?

व्यवहार है, व्यवहार के स्थान में व्यवहार है, नहीं है—ऐसा नहीं। अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान, उसके भान में जब स्थिर हो सकते नहीं; भान होने पर भी, भक्ति, पूजा, तीर्थ, यात्रा होती है। परन्तु उसकी मर्यादा, मर्यादा-उसकी सीमा राग की मन्दता होना, पुण्यबन्ध का होना, उतनी उसकी सीमा है। उससे आगे जाकर जो आत्मा का विशेष लाभ बताते हैं, उसमें लाभ होगा नहीं। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? दृष्टि का ठिकाना नहीं। दृष्टि जहाँ सत्य नहीं है, वहाँ व्रत और नियम कोई भी सच्चा होता नहीं। समझ में आया?

ज्ञान से ज्ञान की उन्नति का ही प्रयोजन हो, वही ज्ञानाचार है। देखो! क्या कहते हैं? जो सम्यग्ज्ञान में सात तत्त्व का वेदन हो, शुद्ध शास्त्र का प्रकाशन हो, शुद्धात्मा तीर्थ शुद्ध को झलकानेवाला हो और '**ज्ञानं ज्ञान प्रयोजन**।' जिस ज्ञान में अपना केवलज्ञान प्रगट करना ही प्रयोजन हो। समझ में आया? अपने सम्यग्ज्ञान से केवलज्ञान प्रगट करना, वह प्रयोजन है। कोई दुनिया की इज्जत लेनी या दुनिया प्रसन्न हो, ऐसा प्रयोजन है नहीं। उसके ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? '**ज्ञानं ज्ञान प्रयोजन**' ज्ञान की उन्नति का ही ज्ञान से प्रयोजन हो। दूसरा कोई प्रयोजन नहीं। अपना शुद्ध सम्यग्ज्ञान ऐसा होता है कि ज्ञान से ज्ञान की बढ़वारी-वृद्धि होती-होती केवलज्ञान हो जाए। दूसरा कोई काम नहीं है। ज्ञान से कुछ पुण्य बँध जाए, या दुनिया में इज्जत मिल जाए, दुनिया में बड़ा कहने में आये, ऐसी भावना हो तो सम्यग्ज्ञान है ही नहीं। ज्ञान का ज्ञान से प्रयोजन हो। समझ में आया? २५० (हुई)। २५१ लो।

**ज्ञानेन ज्ञानमालंबनं, पंच दिप्ती परस्थितं।**
**उत्पन्नं केवलज्ञानं, सार्धं शुद्धं दिष्टितं॥२५१॥**

सम्यग्ज्ञान श्रुतज्ञान के द्वारा। सम्यग्ज्ञान आत्मज्ञान, हों! शुद्ध। आत्मज्ञान को दृढ़ करना ही चाहिए। शुद्ध सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मज्ञान को दृढ़ करना चाहिए। अपना आत्मा

निर्विकल्प शुद्ध है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान को सम्यग्ज्ञान द्वारा दृढ़ करना चाहिए। पंच प्रकार ज्ञानों के भीतर श्रेष्ठरूप से स्थित जो केवलज्ञान। पाँच ज्ञान में भी एक केवलज्ञान। केवलज्ञान प्रगट हो जाए, वह बात ज्ञान में आनी चाहिए। आहाहा! समझ में आया ?

साथ ही शुद्ध आत्मिक प्रत्यक्ष दर्शन हो जाए, उसका नाम ज्ञान कहने में आता है। '**ज्ञानेन ज्ञानमालंबनं**।' देखो! अकेला सम्यग्ज्ञान चैतन्य निर्मल विकल्प रहित जो सम्यग्दर्शन में ज्ञान हुआ, उसके आलम्बन से केवलज्ञान प्रगट हो और पाँच ज्ञान में उसकी अधिकता हो, उसका नाम शुद्ध दृष्टि कहने में आता है। अथवा शुद्ध आत्मिक प्रत्यक्ष दर्शन हो जाए जिस ज्ञान से, उस ज्ञान का नाम ज्ञान है। दुनिया को समझाना आये या नहीं आये, उसके साथ सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया ? हजारों लोगों में बोलने आता है, समझता है, क्या है ? भाषा जड़ की है, आत्मा को क्या है उसमें ? उसका सम्यग्ज्ञान अन्दर में अपने ज्ञान की पूर्णता करने में प्रयोजन हो, उसके ज्ञान को ज्ञान कहने में आता है। सम्यग्ज्ञानी हो, उसे कुछ बोलना भी नहीं आता हो। समझे ? ऐसा है। मंडुक-मेंढ़क। मेंढ़क समकिती होता है। और जैन साधु होकर मिथ्यादृष्टि होता है। अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' सम्यग्दर्शन का भान नहीं और मुनिव्रत अन्दर अनन्त बार धारे, उससे कोई आत्मा का लाभ है नहीं। और मेंढ़क है, चिड़िया... क्या कहते हैं ? चकला, वह भी भगवान के समवसरण में सम्यग्दृष्टि होता है। सुना है ? सम्यग्दृष्टि यहाँ कहते हैं ऐसा।

**मुमुक्षु :** साहब! वैसा ज्ञान कहाँ लेने जाना ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञान आत्मा में है। कहाँ लेने जाना है ? जयचन्दभाई! ज्ञान बाहर से नहीं आता, ऐसा कहते हैं। अन्दर भरा है। केवलज्ञान का कन्द प्रभु आत्मा है। ज्ञान बाहर से आता है ? पुस्तक पन्नों में से आता है ? आहाहा! विश्वास नहीं है, विश्वास। समझ में आया ?

आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' मेरे स्वरूप में सिद्धपद है। मैं ज्ञान का पूर्ण भण्डार हूँ। ऐसा अनुभव करना सम्यग्दर्शन में, उससे ज्ञान की सम्यक्ता प्रगट होती है। बाह्य क्रियाकाण्ड प्रवृत्ति से कोई सम्यग्ज्ञान होता नहीं। समझ में आया ?

आत्मज्ञान से केवलज्ञान लेना, वह उसका प्रयोजन है। दूसरा कोई प्रयोजन है नहीं। समझ में आया? अवधि, मन:पर्यय हो या नहीं हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। अन्तर में मति-श्रुत सम्यग्ज्ञान हुआ सम्यग्दर्शनपूर्वक, तो उसका प्रयोजन केवलज्ञान ही है। दूसरा कोई प्रयोजन है ही नहीं। स्वर्ग मिलेगा, ऐसा मिलेगा, तीर्थंकर गोत्र बाँधेगा, ये प्रयोजन नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बीच में विकल्प आ जाए और बँध जाए, परन्तु ज्ञानी का वह प्रयोजन नहीं है। ज्ञानी का सम्यग्दृष्टि का प्रयोजन अपने ज्ञान से ज्ञान की वृद्धि होकर केवलज्ञान हो जाए, बस! यह सम्यग्दृष्टि का प्रयोजन और हेतु है, दूसरा कोई हेतु है नहीं। समझ में आया? २५२। देखो आया। कल कहा था न? आँख की बात कहीं (आती) है।

**ज्ञानं लोचनं भव्यस्य, जिन उक्तं सार्थं ध्रुवं।**
**सुयं तत्त्वानी विज्ञानं, सुदृष्टि समाचरतु॥२५२॥**

अहो! भव्य जीव की आँख तो ज्ञान है। देखो! यह आँख नहीं। ... नहीं। आत्मा ज्ञानमूर्ति परमानन्द का जिस ज्ञान से भान हो, वह ज्ञानलोचन भव्यजीव को होता है। यह भव्यजीव की आँख है। समझ में आया? आहा! देखो! भव्य जीव की आँख ज्ञान है। जो यथार्थ है, निश्चल है। जो ज्ञान यथार्थ है और निश्चल है। '**सार्थं**' (अर्थात्) यथार्थ। '**ध्रुवं**' (अर्थात्) निश्चल। '**जिन उक्तं**' ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। जिसकी ज्ञान सम्यक् चैतन्य की आँख प्रगट हो गयी, वही उसकी आँख है-वही उसका ज्ञान है। ऐसा त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर ने कहा। दूसरा जानपना हो, न हो, संस्कृत, व्याकरण बोलना, ऐसा-वैसा (नहीं हो), परन्तु जिसको अन्दर सम्यग्ज्ञान नेत्र खुल गये हैं, उसको ज्ञान कहते हैं और उसकी आँख सम्यग्ज्ञान की आँख है। समझ में आया?

'**सुदृष्टि**' सम्यग्दृष्टि जीव श्रुतज्ञान के द्वारा तत्त्वों का विशेष ज्ञान प्राप्त करे। सम्यग्दृष्टि जीव तो अपने भावश्रुतज्ञान द्वारा, भावश्रुतज्ञान द्वारा सम्यग्दर्शन की प्रतीत में जो सारा आत्मा आया है, उसमें भावश्रुत निर्मल द्वारा सर्व तत्त्वों का विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। कहो, समझ में आया? बीच में वह बात तो आ गयी, २५४-२५५ (गाथा की)। आचरण की बात आयी न? थोड़ी यहाँ पात्रदान की बात लेनी है। २६२। २६२, लो।

**ओमकारं च वेदंते, ह्रीकार सुत उच्यते।**
**अचक्षुदर्शन जोयंते, मध्य पात्रं सदा बुधै॥२६२॥**

... सत्य तत्त्वं वेदंते, ऐसा लिया है। यहाँ '**ओमकारं च वेदंते**' आया है। बात तो अन्दर भावश्रुतज्ञान वेदन की है। धर्मी जीव तो अपने आत्मा को अन्दर अचक्षु द्वारा देखते हैं। समझ में आया? श्रावक ओमकार का अनुभव करते हैं। ओमकार शब्द का नहीं, हों! विकल्प नहीं। ओम में कहा है, ऐसा आत्मा का भाव। और '**ह्रीकार**' बीजाक्षर का उच्चरण करते हैं। अन्दर आत्मा केवलज्ञान का बीज है, उसका ज्ञान करते हैं। और अचक्षु दर्शन द्वारा आत्मा को देखते हैं। उनको ही आचार्य ने सदा मध्यम पात्र कहा। देखो! आहार लेने में मध्यम पात्र वह है। समझ में आया? जघन्य चौथा गुणस्थान है न। मध्यम है, और उत्कृष्टि मुनि का है।

अचक्षुदर्शनं। यहाँ श्रावकाचार है या नहीं? अपने आत्मा को अचक्षुदर्शन से देखते हैं। ओहो! आता है न परमात्मप्रकाश में? भाई! परमात्मप्रकाश में। अचक्षुदर्शन। ये सब शब्द जिनागम के ही हैं। परात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव ने कहा है। आत्मा को अचक्षुदर्शन द्वारा देखते हैं। खबर है? नहीं खबर। हाँ तो कहे, क्या करे। पढ़ने का समय नहीं मिलता, (धन्धे) के कारण। कहो, समझ में आया? भाई! परमात्मप्रकाश में आता है न? परमात्मप्रकाश में। शिष्य ने प्रश्न किया, अचक्षुदर्शन क्या है? अचक्षुदर्शन तो अभव्य को भी होता है। अचक्षुदर्शन यदि लो तो निगोद को भी अचक्षुदर्शन है, अभव्य को भी अचक्षुदर्शन है। समझ में आया? इसलिए यह गाथा ली है।

अचक्षुदर्शन क्या? अचक्षुदर्शन तो अभवी को अनादि से है। निगोद को भी अचक्षुदर्शन है। अचक्षुदर्शन बिना का कोई प्राणी होता ही नहीं। परन्तु यह अचक्षुदर्शन दूसरा है। इस आँख के बिना अन्तर सम्यग्ज्ञान से आत्मा को देखना उसका नाम अचक्षुदर्शन कहने में आया है। पण्डितजी! कोई-कोई गाथा ऐसी है। खास लेने को ख्याल आवे कि कैसा अर्थ भरा है उसमें। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** फिर से कहते हैं। ऐसा कहते हैं कि प्रभु कहते हैं कि भाई! तेरा

प्रभुत्व स्वभाव अन्दर अनन्त गुण का भण्डार पड़ा है। उसका अन्तर ज्ञान, दर्शन, जिसमें ये चक्षु नहीं है, यह स्पर्श नहीं, कोई इन्द्रिय नहीं। अतीन्द्रिय ऐसे अचक्षुदर्शन द्वारा आत्मा को देखना। समझ में आया? अन्दर अचक्षु अर्थात् ये चक्षु नहीं। सम्यग्दर्शन द्वारा आत्मा को देखना, सम्यक् लोचन द्वारा आत्मा को देखना, उसका नाम अचक्षुदर्शन से देखा— ऐसा कहने में आता है। मिथ्यादृष्टि को अचक्षुदर्शन है, उसमें क्या आया? चक्षु, अचक्षुदर्शन है न? वह तो अभव्यों को भी होता है, अनादि निगोद में भी है, अचक्षुदर्शन। फिर चौइन्द्रिय होता है, तब चक्षुदर्शन होता है। वह नहीं।

यहाँ तो अन्तर की आँख। पाँच इन्द्रिय भी नहीं, मन भी नहीं। पाँच इन्द्रिय नहीं, मन नहीं। समझ में आया? ऐसे अन्तर ज्ञान की पर्याय द्वारा आत्मा को देखना, अनुभवना, प्रतीत करना उसका नाम '**अचक्षुदर्शन जोयंते**' है। समझ में आया? देखते हैं। जोयते अर्थात् देखते हैं। कौन-सी आयी? २६६। थोड़ी २६६ लो। अविरति सम्यग्दृष्टि है न? २६६।

**मिथ्या त्रिविध न दिष्टंते, सल्य त्रय निरोधनं।**
**सुयं च शुद्ध द्रव्यार्थ, अविरत सम्यक्दृष्टितं॥२६६॥**

अविरत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला। यहाँ पात्र गिनना है न? तो पात्र कैसा है अविरत सम्यग्दृष्टि? उसका लक्षण बताया। अविरत सम्यग्दृष्टि। अन्तर में अभी आसक्ति का त्याग नहीं है। अन्दर स्वरूप की स्थिरता-चारित्र आदि नहीं है। परन्तु '**मिथ्या त्रिविध न दिष्टंते**' जिसमें मिथ्यात्वभाव, मिश्रभाव, समकितमोहनीयभाव है नहीं। मिथ्यात्व की तीन प्रकृति है। उसका भाव भी आत्मा में तीन प्रकार का होता है। मिथ्यात्व, मिश्र और समकित। ये तीन प्रकार का भाव सम्यग्दृष्टि को होता नहीं। यहाँ तो उत्कृष्ट बात करते हैं। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को.. देखो! यह पंचम काल की बात करते हैं। पंचम काल की बात है न, यह कहाँ चतुर्थ काल की बात है। ... समकितमोहनीय थोड़ा है, लेकिन दृष्टि में देखते नहीं। त्रिकाल ज्ञायक शुद्ध अनाकुल आनन्द ज्ञान का पिण्ड निर्मल, ऐसा सम्यग्दृष्टि को तीन मिथ्यात्व से रहित आत्मा दिखता है।

'**सल्य त्रय निरोधनं**' समकिती को तीन प्रकार का ... है। मिथ्यादर्शन है नहीं, मिथ्याश्रद्धा उसे है नहीं, मिथ्यात्व, निदान शल्य है नहीं, माया शल्य है नहीं। समझ में आया? नि:शल्यो व्रती। आता है या नहीं? तत्त्वार्थ सूत्र में आता है। नि:शल्यो व्रती। मिथ्यात्व है, माया शल्य है, तबतक व्रत-फ्रत कहाँ से आया? दृष्टि में तो खबर नहीं है कि आत्मा क्या, पुण्य क्या, दया क्या, ... क्या, जड़ क्या, परिपूर्ण क्या, कैसे ज्ञान से क्या प्राप्त होता है, खबर नहीं। उसको व्रत-फ्रत कहाँ से आया? क्रिया कहाँ से आयी यथार्थ ज्ञान बिना?

कहते हैं, तीन शल्य रहित। नि:शल्यो व्रती। मिथ्याशल्य, निदानशल्य और मायाशल्य रहित हो तो व्रतभाव पंचम गुणस्थान आता है। नहीं तो पंचम गुणस्थान आता नहीं। ओहोहो! यह श्रावकाचार की बात चलती है। पंचम गुणस्थान का आचार कैसा है, यह चलता है। उसमें तीन प्रकार का शल्य नहीं होता है। मिथ्यात्व का तीन भाव-समकित मोहनीय, मिश्र, '**सुयं च शुद्ध द्रव्यार्थ**।'

'**शल्य त्रय निरोधनं**' कहा न? रोकता है। और श्रुतज्ञानी है। सम्यग्दृष्टि श्रुतज्ञानी है। भावज्ञानी है। भाव आत्मा का ज्ञान और भास हुआ है, चिदानन्द (हूँ)। ऐसे भावश्रुतज्ञान को सम्यग्दृष्टि कहते हैं। भले अव्रती हो। समझ में आया? अविरत लेते हैं न? देखो! मूल में लिया है। अविरत सम्यग्दृष्टि का भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने लक्षण कहा, वह लक्षण यहाँ कहने में आता है। वह शास्त्र में बहुत चलता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को समझता है। द्रव्यार्थिक है या नहीं? सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध द्रव्यार्थिकनय आत्मा एकरूप द्रव्यार्थिक-द्रव्य जिसका अर्थ-प्रयोजन है, ऐसे ज्ञान से आत्मा कैसा है, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से द्रव्यदृष्टि से आत्मा को जानते हैं। समझ में आया? एक समय की पर्याय, दया, दान का विकल्प और निमित्त, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय नहीं है। वह पर्यायनय का विषय है, व्यवहारनय का विषय है। उसको ज्ञानी जानते हैं। आदरणीय द्रव्यार्थिकनय का विषय (है)। द्रव्यार्थिक किसे कहना और विषय किसे कहना? क्या होगा?

शुद्ध द्रव्यार्थिक कहा न? देखो न! शुद्ध द्रव्य अर्थ। जिसको शुद्ध द्रव्य प्रयोजन है लक्ष्य में। फिर द्रव्यार्थिकनय कहा। अर्थी। अर्थी अर्थात् प्रयोजन। एक भगवान परिपूर्ण

आत्मा द्रव्यदृष्टि में आता है, द्रव्यार्थिकनय का विषय है, वही सम्यग्दृष्टि का प्रयोजन है। समझ में आया ? कहाँ गयी पर्याय ? जाये कहाँ ? होती है, वह व्यवहार से जाननेलायक है, आदरनेलायक नहीं है। सम्यग्दृष्टि को अपनी पर्याय निर्मल हो, वह भी आदरणीय नहीं। क्योंकि पर्याय में से निर्मल पर्याय होती नहीं। समझ में आया ? पर्याय कौन और द्रव्य कौन ? (इसकी खबर नहीं)।

नियमसार में तो कहते हैं कि, सम्यग्दृष्टि को क्षायिक समकित पर्याय हुई, क्षायिक समकित। समझ में आया ? परन्तु उसका प्रयोजन द्रव्य पर है, ध्रुव पर है। वह क्षायिक समकित को भी नियमसार की ५०वीं गाथा में परद्रव्य कहा है, हेय कहा है और परभाव कहा है। यह क्या आ गया ? भाई ! '**सुयं च शुद्ध द्रव्यार्थ**' शब्द पड़ा है न ? सम्यग्दृष्टि का विषय द्रव्य है। त्रिकाल ज्ञायक अखण्डानन्द पूर्ण वस्तु। पर्याय में क्षायिक समकित हो, अरे.. ! मुनि हो छट्ठे गुणस्थान में तीन कषाय का अभाव होकर चारित्रदशा हो, वह भी सब व्यवहार में जाता है। क्या ? समझ में आया ? पण्डितजी !

राग, दया, दान, अट्ठाईस मूलगुण तो विकल्प है, वह तो व्यवहार में है ही। परन्तु अपनी पर्याय में जितनी शान्ति और चारित्र सम्यग्दर्शनपूर्वक प्रगट हुई, वह भी निश्चय दृष्टि के विषय के आगे वह व्यवहारनय के विषय में जाता है। बहुत समझना पड़ेगा। डालचन्दजी ! ऐसे ऊपर-ऊपर से पैसा मिल गया, वैसे ये चीज़ नहीं मिलेगी। प्रयत्न करना पड़ेगा।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुछ मेहनत करता नहीं। उससे भी ज्यादा मेहनत करते हैं, कुछ मिलता नहीं। क्यों सेठ ? आपसे अधिक मेहनत करनेवाले दूसरे बहुत हैं या नहीं ? कुछ नहीं मिलता। आपको पैसा मिला तो क्या तुम्हारी मेहनत से मिला है ?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... कौन ? मोही प्राणी राग किये बिना रहे नहीं। मोही प्राणी है तो राग हुए बिना रहता है उसको ?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिलना, नहीं मिलना कोई राग के पुरुषार्थ से मिलता नहीं।

समझ में आया ? देखो ! अविरत सम्यग्दृष्टि व्याख्या। उसको अविरत चौथा गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि कहते हैं, जो मोक्षमार्ग की पहली सीढ़ी (है)। मोक्षमार्ग की पहली सीढ़ी।

'**सुयं च शुद्ध द्रव्यार्थ**' अपना द्रव्य परिपूर्ण जिसकी दृष्टि में है। अपनी प्रगट हुई निर्मल पर्याय सब व्यवहार है, हेय है; उपादेय नहीं, आदरणीय नहीं। परद्रव्य है, परभाव है। किस अपेक्षा से ? त्रिकाल द्रव्य पर दृष्टि देने से यह पर्याय प्रगट होती है। निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसमें से नयी निर्मल पर्याय नहीं आती। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म, भाई ! इसमें सूक्ष्म आया, द्रव्यार्थिक। सम्यग्दृष्टि का प्रयोजन एक शुद्ध द्रव्य (है)। पर्याय है सही, नहीं है—ऐसा नहीं, नास्ति नहीं है, ज्ञान करनेलायक है, जाननेलायक है। शुद्ध द्रव्य ज्ञायकस्वभाव एकरूप अखण्ड, जैसा केवलज्ञानी ने देखा, ऐसी प्रयोजन दृष्टि में द्रव्यार्थिकनय का विषय है। ऐसा माननेवाला, जाननेवाला, उसको '**अविरत सम्यग्दृष्टितं**' अविरत सम्यग्दृष्टि होता है। समझ में आया ? बहुत अच्छी बात कही है। ... अब ज्ञान में कथनशैली समझानी है। २७२।

**पात्र दानं च शुद्धं, च कर्म क्षिपंति सदा बुद्धै।**
**जे नरा दान चिंतते, अविरत सम्यग्दृष्टितं ॥२७२॥**

एक और जगह आता है, '**अविचत**' आता है। २७८ में आता है, उसके साथ मिलान करना है। कथन पद्धति थोड़ी ऐसी है तो ध्यान रखना। चौथे गुणस्थानवाला अविरत सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में रहता है, फिर भी कैसा होता है ?

सदा बुद्धिमानों के द्वारा दिया हुआ शुद्ध पात्र दान। ऐसा सम्यग्दृष्टि; बुद्धिमान अर्थात् सम्यग्दृष्टि, उसके द्वारा दिया हुआ शुद्ध पात्र दान। शुद्ध सम्यग्दर्शन सामने हो, मुनि हो, सम्यग्दृष्टि सच्चे ज्ञानी पात्र हो, दान देने में '**कर्म क्षिपंति**' वह पापकर्म का क्षय करता है, ऐसा लेना। निर्जरा करता है, ऐसा नहीं लेना। समझ में आया ? देखो ! २७८ में लिया है। २७८ है न ?

**पात्र दानं च भावेन, मिथ्यादृष्टि च शुद्धये।**
**भावना शुद्ध संपूर्णं, दानं फलं स्वर्ग गामिनन ॥२७८॥**

शुद्ध तो एक अपेक्षा से शुभभाव है, उतनी बात है। समझ में आता है ? शुद्ध आत्मा

की भावना से (परिणत) सम्यग्दृष्टि को ... स्वर्गगमन है। मूल तो पुण्यबन्ध होता है। सम्यग्दृष्टि को, सच्चे सम्यग्दृष्टि को सन्तों को आहार देने का भाव पुण्यबन्ध का ही कारण है। संवर, निर्जरा का कारण नहीं। समझ में आया? पहले बात आ गयी है परसों। परद्रव्य चिन्त्ये। परद्रव्य चिन्तये आया है न? आ गया है। जितना परद्रव्य का चिन्तन, विकल्प, परद्रव्य अपेक्षा से आते हैं, सब पुण्यबन्ध का (कारण है)। व्यवहारधर्म पर लक्ष्य हो तो पुण्यबन्ध कहा है। स्त्री-कुटुम्ब, परिवार पर लक्ष्य जाता है तो पापपरिणाम है। कोई उसमें अबन्ध परिणाम; परद्रव्य के आश्रय से विकल्प है, उसमें अबन्ध परिणाम कभी होता नहीं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सिद्धों का ध्यान। सिद्ध परद्रव्य हैं। जितना विकल्प उठता है उतना पुण्यबन्ध का कारण है। अपने स्वरूप की अन्तर एकाग्रता संवर, निर्जरा का कारण है। वह पहले कहा था। पहले गाथा में (आ गया है), परद्रव्य न चिन्तये। सिद्ध भी परद्रव्य है। अपना द्रव्य है नहीं। समझ में आया? परद्रव्य, पहले आया था न? एक गाथा में आ गया। परद्रव्यं न चिन्तये। १८४ गाथा। अपने आ गयी है। इसमें थोड़ा-थोड़ा लिख लिया है। सब नहीं रहता, इसलिए थोड़ा-थोड़ा लिख लिया। सेठ आये, तब कहा था न? सेठ! पहले सब देख लिया था। १८४ है, देखो!

**आत्मा सद्भावं आरक्तं, परद्रव्यं न चिन्तये।**
**ज्ञानमयो ज्ञान पिण्डस्य, चेतयन्ति सदा बुद्धै॥१८४॥**

है न? परद्रव्य की चिन्ता न की जाए। परद्रव्य कोई भी हो, अपने द्रव्य सिवाय। परद्रव्य का भेद लक्ष्य में आया, (उसमें) विकल्प उठता है, वह पुण्य है। आहाहा! लोगों को सत्य धर्म क्या चीज़ है, उसकी पहिचान भी नहीं, श्रद्धा का ठिकाना नहीं, सम्यग्दर्शन तो कहाँ रहा? और धर्म मान ले। अनादिकाल से ऐसा ... है। है न? '**आत्मा सद्भावं**' अपने सद्भाव में '**आरक्तं।**' '**परद्रव्यं न चिन्तये, ज्ञानमयो ज्ञान पिण्डस्य।**' अकेला ज्ञानमय आत्मा। अपना चिन्तये अर्थात् अनुभव करना। चिन्तये का अर्थ विकल्प करना, ऐसा नहीं है। '**सदा बुद्धै**' देखो! '**सदा बुद्धै**' ज्ञानी को सदा अपने द्रव्य का आश्रय करके

लीनता करनी। '**सदा बुद्धै।**' '**बुद्धै**' अर्थात् ज्ञानी सम्यग्दृष्टि। समझ में आया? कितने अर्थ समझना, इसमें कितना याद रखना एक घण्टे में? भाई! तेरे में तो केवलज्ञान लेने की ताकत है। बापू! तू प्रभु है। यह तो प्रभु होने की बात है। आहाहा! क्या कहा? कौन-सी चलती है? २७२। उसमें २४८ ली।

पात्रदान करने से, उसकी भावना करने से मिथ्यादृष्टि की शुद्धि हो सकती है। उसका अर्थ शुभभाव, हों! यहाँ शुद्धि का अर्थ संवर-निर्जरा होती है, ऐसा नहीं। मिथ्यादृष्टि हो.. समझ में आया? मिथ्यादृष्टि भी सच्चे ज्ञानी को दान करे तो वह शुभ विकल्प है। समझ में आया? परद्रव्य का आश्रय जितना हो, उतना विकल्प है। सम्यग्दृष्टि को भी पात्रदान में विकल्प ही है। और शुद्धात्मा की भावना से परिपूर्ण सम्यग्दृष्टि है। उनको पात्रदान का फल स्वर्गगमन है। समझ में आया? ...२७८। '**कर्म क्षिपंति**' लिया है अर्थात् वह संवर, निर्जरा करे—ऐसा नहीं है। पापकर्म क्षय होता है, ऐसा अर्थ लेना। और पुण्यबन्ध होता है तो स्वर्ग में जाते हैं, ऐसा लेना। समझ में आया?

एक ओर परद्रव्य के चिन्तवन से राग और एक ओर परद्रव्य को आहार देने से कर्म क्षय हो, ऐसा है ही नहीं। वह तो पाप का परिणाम हट जाते हैं, पुण्य परिणाम होता है तो उतना पाप खिरता है। बाकी उसमें... लिखा न? '**पात्र दानं च भावेन।**' '**भावना शुद्ध सम्पूर्णं**' सम्यग्दृष्टि '**दानं फलं स्वर्ग गामिनन।**' स्वर्ग में जाएगा। समझ में आया? पाप नहीं होता। उसमें लगा दे कि गुरु को आहारदान देने से भव का नाश हो जाएगा, परित संसार हो जाएगा। कभी है नहीं। आहाहा! व्यवहार पराश्रित क्या है, स्वाश्रित क्या है, (उसे समझे) बिना वीतरागमार्ग में गड़बड़ हो जाए। समझ में आया? अपनी स्वच्छन्दता से अर्थ करे तो शास्त्र का विरोध हो जाए। २७२।

'**पात्र दानं च शुद्धं, कर्म क्षिपन्ति सदा बुद्धै।**' देखो! '**जे नरा दान चिन्तते।**' सम्यग्दृष्टि को भावना होती है। भरत चक्रवर्ती जैसा छह खण्ड का धनी क्षायिक समकिती। आहार के समय.. ओहो! सम्यग्दृष्टि मुनि सन्त भावलिंगी हमारे आँगन में कल्पवृक्ष कहाँ! सम्यग्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि मुनि की भावना करते हैं। बड़ा बँगला है। चक्रवर्ती है न। इन्द्र जैसा तो बँगला होता है। ... रत्न को पहनकर बाहर निकले। बँगला तो बहुत दूर है। दरवाजे

(उतने हैं)। बाहर निकलकर (भावना भाते हैं), अरे.. ! कोई मुनि.. भावलिंगी सन्त, हों! सम्यग्दृष्टि अनुभवी, ऐसी भावना करते हैं कि हमारे.. तभी ऊपर से मुनि उतरते हैं। उतरते हैं। ओहो! आज मेरे आंगन में कल्पवृक्ष आया। उतनी शुभभाव की भक्ति सम्यग्दृष्टि को आये बिना रहती नहीं। परन्तु वह शुभभाव है। वह संवर, निर्जरा नहीं। वह बात समझने की है। इसलिए वह गाथा ली थी।

**'जे नरा दान चिन्तते, अविरत सम्यग्दृष्टितं।'** उसको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। दान की भावना होती है। मुनि को दान, समकिती को समकिती दे, समकिती श्रावक को दे, समकिती मुनि को दे। ऐसी भावना है। परन्तु वह सब पाप का थोड़ा क्षय होता है, पुण्य का बन्ध होता है। दृष्टि स्वभाव पर है। जितनी एकाग्रता स्वभाव में (है), उतनी संवर, निर्जरा होती है। (समय) हो गया.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(८)

**आसोज शुक्ल १४, मंगलवार, २०-१०-१९६४**
**श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार, गाथा-२९४ से २९६,**
**३०५, ३२५, ३३३, ३४६, ३५६, ३९२, ३९९, ४००, प्रवचन - २५**

श्रावकाचार तारणस्वामी रचित है। इसमें मिथ्यात्व और समकित का ... सुख-दुःख का कारण बताते हैं। २९६। २९४, २९५ बाद में लेंगे।

**मिथ्यात्वं परमं दुःखं, सम्यक्तं परम सुखं।**
**तत्र मिथ्यामतं तत्त्वं, शुद्ध सम्यक्त सार्धयं॥२९६॥**

यह श्रावक की मूल बात है। मिथ्यादर्शन परम दुःख का कारण है। समझ में आया? निर्धनता, प्रतिकूलता, नरगति आदि दुःख का कारण नहीं है। मिथ्याश्रद्धा, वास्तविक तत्त्व का भान नहीं है और विरुद्ध मान्यता करनेवाले का विश्वास करके विरुद्ध मान्यता करना। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की खबर नहीं, क्या देव-गुरु-शास्त्र हैं, क्या देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं, और विपरीत मानना। आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्ञायक है, उसको रागसहित अन्दर मानना पुण्य की क्रिया से अपने में धर्म मानना, पाप के परिणाम से अपने में मजा मानना, पर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, पर की रक्षा कर सकता हूँ, ऐसा मानना—ऐसा माननेवाले का विश्वास करना, वह सब मिथ्यात्वभाव है। ... मिथ्यात्व में तो। २९४-२८५ बाद में लेंगे। समझ में आया? है न? पण्डितजी!

'**मिथ्यात्वं परमं दुःखं**' मिथ्या-विपरीत मान्यता, उल्टी श्रद्धा; जानपना भले थोड़ा हो, परन्तु उल्टी श्रद्धा महान पाप है। जानपना ग्यारह अंग नौ पूर्व का पढ़ ले। जैनशास्त्र, हों! दूसरे बोध की बात ही नहीं है, वह सब तो अज्ञान है। दूसरा जानपना करना, वह सब तो अज्ञान, अज्ञान और अज्ञान है। शास्त्र का पढ़ना, ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़ा, परन्तु दृष्टि सम्यक् किये बिना उसका ज्ञान भी अज्ञान कहने में आता है। समझ में आया?

**'मिथ्यात्वं परमं दु:खं'** विपरीत मान्यता निगोद का कारण है। परम दु:ख की व्याख्या वह है। परम दु:ख समझे? निगोद के अलावा ऐसा दु:ख नहीं है। निगोद समझे? आलू, काई, एक शरीर में अनन्त जीव। कहते हैं मिथ्या दृष्टि जैसा कोई दु:ख नहीं है। मिथ्यादृष्टि ग्यारह अंग पढ़ लेवे, नौ पूर्व पढ़े, जगत की विचक्षणता, जगत का सब बोध कर ले, फिर भी मिथ्यादृष्टिपना नहीं छोड़े तो मिथ्यात्व के कारण निगोद में महादु:ख पायेगा। समझ में आया? ... निगोदं गच्छई। मिथ्याश्रद्धा क्या है, सम्यग्दर्शन क्या है—यह मालूम नहीं.. समझे? और (माने कि) हम जैन हैं।

**मुमुक्षु :** परन्तु जैन में जन्मा हो, वह मिथ्यादृष्टि थोड़े होता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जैन में धूल में जन्मा है। जैन कहाँ है? जैन में जन्मा। बोरी पर लिखा केसर, तो क्या केसर की बोरी हो जाती है? ऊपर तो वारदान है। जैन नाम दिया वारदान का, हम जैन हैं। उसमें क्या आया? अनन्त बार ऐसा ब्रह्मचर्य भी अनन्त बार पाला, दया भी अनन्त बार (पाली), भाव क्रिया, हों! दया का भाव। छह काय की (दया) पाल नहीं सकता। ऐसा अनन्त बार व्रत, नियम किया। अपने आ गया है। उग्र तपं व्रतं। आ गया न? वह तो अनन्त बार किया। परन्तु मिथ्याश्रद्धा जो अनन्त काल में एक सेकेण्ड ... गयी नहीं। तो वह मिथ्याश्रद्धा क्या है, सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं, खबर नहीं। सबका समान धर्म। समझ में आया? हमारा भी समान है, आपका भी समान है। ... सब ... करते हैं।

ऐसा मिथ्यात्वभाव परम दु:ख अर्थात् निगोद का कारण है। समझ में आया? पढ़ा-लिखा उसका सब पानी में जाएगा। मिथ्याश्रद्धा रखनेवाला-पर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, पर को सुख-दु:ख हम दे सकते हैं, पर से हमारा कल्याण (हो जाएगा), अथवा पर का आशीर्वाद मिले तो हमारा कल्याण हो जाए, ऐसी चीज़ है नहीं। समझ में आया? मिथ्यादर्शन परमदु:ख का कारण है। निगोद का कारण है। कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं, एक वस्त्र का धागा रखकर हम मुनि हैं—ऐसा माने, मनावे, मानने को सम्मत हो, निगोदं गच्छई। क्योंकि वास्तविक सर्वज्ञ परमात्मा ने जो तत्त्व कहा, उसमें एक भी फेरफार हो (तो) सारे नौ तत्त्व बिगड़ जाते हैं। समझ में आया? ऐसी मान्यता करनेवाला निगोद में-निगोद में जाएगा।

'**सम्यक्तं परम सुखं**।' समकित के सिवाय कहीं सुख है नहीं। समकिती मोक्ष में जानेवाला है। अल्प काल में एक-दो भव में उसकी मुक्ति होगी। भले ज्ञान थोड़ा हो, क्रिया वर्तमान आचरण न हो, परन्तु सम्यग्दर्शन शुद्ध हो (तो भी उसकी मुक्ति होगी)। श्रेणिक राजा। कोई त्याग नहीं किया, व्रत, नियम था नहीं। सम्यग्दर्शन शुद्ध था तो उसके कारण एकाध भव में भविष्य में तीर्थंकर होंगे। समझ में आया? आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होंगे। वह सम्यग्दर्शन का प्रताप है। सेठी!

'**सम्यक्तं परम सुखं**।' कहो, समझ में आया? सम्यग्दर्शन.. ओहो! अन्तर आत्मा.. एक क्रिया राग का कर्ता मैं, पुण्य का, दया के भाव का कर्ता भी मैं नहीं तो पर की क्रिया का मैं कर्ता नहीं। ऐसा अपना शुद्ध चैतन्य में ज्ञाता-दृष्टा के अनुभव में प्रतीत (होना), ये सम्यग्दर्शन अनन्त आनन्द का-मोक्ष का कारण है। उसकी तो कीमत नहीं है अभी। बाह्य क्रिया करे, व्रत करे, क्रिया करे, तप करो (तो).. ओहो! बड़ा संयमी है। समझ में आया? और व्रतादि न हो तो कहे, त्याग है? कोई त्याग नहीं है! भगवान का मार्ग तो त्याग है। सुन तो सही। समझ में आया? सम्यग्दर्शन बिना का त्याग सब नरक, निगोद में ले जानेवाला है। अभिमान है उसको अन्दर में। स्वभाव का भान नहीं, हमने किया, ऐसा किया। कहते हैं, '**सम्यक्तं परम सुखं**।' समकित के सिवा कोई परमसुख का कारण जगत में है ही नहीं। समझ में आया?

'**तत्र मिथ्यामतं तत्त्वं**' इसलिए मिथ्याश्रद्धा, मिथ्या अभिप्राय छोड़कर '**शुद्ध सम्यक् सार्धयं**।' शुद्ध सम्यग्दर्शन से अपना साथ बनाना चाहिए। सम्यग्दर्शन का साथ बनाना चाहिए। सथवारा, सथवारा को क्या कहते हैं? साथीदार। चलता है न? साथीदार होता है। सम्यग्दर्शन को साथीदार बनाना। अपना शुद्ध ज्ञायक परमात्मा। दूसरा बोध हो, न हो; दुनिया माने, न माने; व्रत संयम हो या न हो, परन्तु सम्यग्दर्शन यथार्थ हुआ, अल्प काल में वह सम्यग्दर्शन के प्रताप से केवलज्ञान और मोक्ष पायेगा। कहो, समझ में आया? अब, २९४। वह २९६ के पहले थी। वह पहले आ गया था। पहले आठ व्याख्यान हुआ न? उसमें यह व्याख्यान आ गया था। पहले सोलह व्याख्यान हुए, उसमें आठ गाथा का आ गया। इस गाथा में नहीं आया, देखो! २९४।

**मिथ्या संग न कर्तव्यं, मिथ्या वासना वासितं।**
**दूरेहि त्यजंति मिथ्यात्वं, देसो त्याग च कर्तव्यं॥२९४॥**

विपरीत मान्यता, एक कण भी सूक्ष्म मिथ्यात्व। टोडरमलजी ने सातवें अध्याय में बहुत लिया है। जैन दिगम्बर में जन्मा, फिर भी सूक्ष्म भी मिथ्यात्व रहता है। व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है, निश्चयाभासी व्यवहार विकल्प आता है, उसको जानते नहीं, मानते नहीं। सातवें अध्याय में बहुत अधिकार लिया है। कहते हैं कि मिथ्यात्व का संग न करना चाहिए। मिथ्यादृष्टि का संग नहीं करना चाहिए और मिथ्यात्व का भाव नहीं करना चाहिए। जिसकी दृष्टि विपरीत है, उसका संग छोड़ना चाहिए। नहीं तो कुसंग से मिथ्यात्व की लकड़ी घुस जाएगी।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परद्रव्य नुकसान क्या करे? परन्तु उसके संग को अच्छा जाने तो उसकी उल्टी प्रतीति हो जाएगी। समझ में आया? उल्टी प्रतीत करा देगा कि ऐसा है, ऐसा नहीं है और ऐसा है। अपनी मिथ्याश्रद्धा है दूसरे में (तो) बना दे। माने तो बना दे। माने बिना क्या? यहाँ लिखा है न, देखो! '**मिथ्या वासना वासितं**' मिथ्यात्व की वासना-गन्ध थोड़ी बैठी हो। उल्टी श्रद्धा-एक विकल्प से धर्म होता हे, निमित्त से कार्य होता है, मैं पर का कार्य कर सकता हूँ, कोई भी, थोड़ी भी सूक्ष्म। समझ में आया? सेठी!

'**दूरेहि त्यजंति मिथ्यात्वं**' छोड़ दे, दूर छोड़ दे। '**देश इत्यादि**' देश आदि का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्षेत्र हो तो छोड़ देना चाहिए। उल्टा संग हो, जिसमें मिथ्यात्व का पोषण मिले, मिथ्यात्व की प्ररूपणा-कथन मिले। सच्चे तत्त्व का भान नहीं हो, ऐसा क्षेत्र छोड़ देना चाहिए।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह मेरे मन में आया था, तुम बोले। विमलचन्दजी! वहाँ साधन नहीं था (तो) छोड़ दिया। नहीं। विमलचन्दजी को देखा है न? अभी थे। बहुत वांचन, उसका दिमाग बहुत है। छोटी उम्र है। उम्र तो २८ वर्ष की है, परन्तु दिमाग.. शास्त्र का वांचन, हाँ! धवल, जयधवल, महाधवल, समयसार, प्रवचनसार आदि सब शास्त्र। दूसरी

कोई बात नहीं।.. पढ़ा, और एक ओर शास्त्र। बस, दो के सिवा, कोई तीसरी बात ही नहीं। जवान है, अभी तो २८ साल की उम्र है। अभी जवान है। उसकी समझने की भावना, जानने की बहुत। और जयधवल, महाधवल का बहुत वांचन। याददाश्त भी बहुत। आस्थावाला आदमी, हों! आस्था। वहाँ ठीक नहीं था। ३५० वेतन मिलता था। वहाँ.. क्या कहते हैं ? डालमियानगर। नहीं, नहीं।

**मुमुक्षु :** डालमियानगर जैन का गाँव है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वहाँ कहाँ भान था ? जैन नाम धराये सम्प्रदाय का। जैन किसको कहना ? जैन किसको कहना ? जैन की दृष्टि क्या ? जैन क्या कहते हैं ? वीतराग का क्या मार्ग है ? अभी सत्य उसे सुनने में आया नहीं, श्रद्धा कहाँ से लावे। समझ में आया ? देखो! अपने आता है न ? पद्मनन्दी पंचविंशति में आता है। पद्मनन्दी पंचविंशति में आया था। देश छोड़ देना। जिससे मिथ्यात्व-विपरीत प्ररूपणा (होती हो, वह) संग छोड़ दे। समझ में आया ? कुन्दकुन्दाचार्य तो मूलाचार में वहाँ तक कहते हैं, मूलाचार में, कि जिसकी दृष्टि में विपरीतता है, (उसने) दूसरा जानपना चाहे जितना किया हो और व्रत, नियम भी हो, परन्तु जिसकी दृष्टि में विपरीतता है, (उसका) संग छोड़ देना। क्या करें ? यह संग छोड़, शादी कर ले, स्त्री का संग कर। परन्तु ऐसा संग छोड़ दे। ऐसा पाठ लिया है। ऐई! पाठ है, गाथा है। है या नहीं ? लाओ तो सही। सेठ सुने तो सही। डालचन्दजी मुश्किल से आये हैं। डालचन्दजी कहते थे, यहाँ से जाने का मन नहीं करता। समझ में आया ?

कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। जिसकी दृष्टि-मान्यता में ठिकाना नहीं, समझ में आया ? यहाँ भी सच्चा, ये भी सच्चा, वह भी सच्चा। व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं। निश्चय सम्यग्दर्शन तो एक ओर रहा। कहते हैं कि उसका संग नहीं करना। क्या करना ? उसका संग छोड़ दे। कौन-सी गाथा है ? दसवाँ अधिकार। ४९२ है। देखो! क्या कहते हैं ? देखो! ... कहते हैं कि अभी आत्मा का भान नहीं है और रागादि के वश त्याग ले लेते हैं, मुनि हो जाते हैं, और उसकी श्रद्धा में विपरीत वासना पड़ी है, तो उसका संग नहीं करना।

**वरं गणपवेसादो विवाहस्स पवेसणं।**
**विवाहे रागउपपत्तिगणो दोसाणागरो॥९६॥**

कहते हैं कि '**वरं गणपवेसादो विवाहस्स पवेसणं**' कु-खोटा संग, साधु कुसंग, विपरीत मान्यता करानेवाला। समझ में आया? उसका संग छोड़ दे। उसके बदले '**विवाहस्स पवेसणं**' क्या कहा? ... क्या कहा? '**वरं गणपवेसादो विवाहस्स पवेसणं**' खोटे संग में रहने के बदले '**वरं विवाहस्स पवेसणं**' स्त्री से शादी करना प्रधान है। क्योंकि स्त्री के साथ शादी करने में तो चारित्र का राग का ही दोष आयेगा, मिथ्यात्व का दोष नहीं आयेगा। आहाहा! समझ में आया? दुनिया को कठिन लगता है वर्तमान में। बाह्य त्याग... मूल चीज़ क्या है, उसका भान नहीं। देखो पाठ।

'**यति अन्त समय में यदि गण में प्रवेश करेंगे तो शिष्यादिक में मोह उत्पन्न होगा तथा मुनिकुल में मोह उत्पन्न होने के लिये कारणभूत ऐसे पार्श्वस्थादिक पाँच मुनिराज को सम्पर्क होगा। उनके सम्पर्क की अपेक्षा से विवाह में प्रवेश करना अर्थात् गृह में प्रवेश करना अधिक अच्छा है। क्योंकि विवाह में स्त्री आदिक परिग्रहों का ग्रहण होता है और उससे रागोत्पत्ति होती है। परन्तु गण तो सर्व दोषों का आकार हैं।**' उल्टे संग की श्रद्धा के परिचय में रहना, '**उससे मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, राग-द्वेषादिक उत्पन्न होते हैं। विवाह में मिथ्यात्व नहीं होगा...**' बड़ी कठिन बात।

मुनि सन्त भावलिंगी छट्ठे-सातवें गुणस्थान में (झूलते) आचार्य। जो, मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। तीसरे स्थान में नाम दिया। कहते हैं कि कुसंगी साधु, कुसंगी गृहस्थ, जिसकी वासना में मिथ्यात्व पड़ा है, तत्त्व का कुछ भान नहीं, (उसका संग करने से तो) विवाह में मिथ्यात्व नहीं है, मात्र चारित्रदोष होगा। ऐ.. प्रेमचन्दजी! देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य के मूलाचार की ९६ गाथा है। दुनिया को भान कहाँ है। समझ में आया? बाह्य त्याग, बाह्य ये, बाह्य वेष, ये क्रिया और वह क्रिया। उसकी प्रतीति और उसका भरोसा। तत्त्व की क्या विपरीतता है, भान नहीं है उसको और भान नहीं है उसको। डालचन्दजी!

'**विवाहे रागउपपत्तिगणो दोसाणागरो**' उल्टी श्रद्धावाले संग में तो अकेला पाप और मिथ्यात्व की खान है। मिथ्यात्व की खान है। उस दोष की कीमत नहीं, मिथ्यात्व के दोष की जगत को कीमत नहीं। निगोद का कारण है। यहाँ लिया न? '**मिथ्यात्वं परमं दुःखं।**' वह क्या चीज़ है, (उसकी) खबर नहीं। कहते हैं, '**देसो त्याग च कर्तव्यं।**' देस

छोड़ देना। अब थोड़ा आता है, थोड़ा कथन आता है।

**मिथ्या दूरेहि वाचंति, मिथ्या संग न दिष्टिते।**
**मिथ्या माया कुटुम्बस्य, विरते सदा बुद्धे॥२९५॥**

देखो! तारणस्वामी क्या कहते हैं? मिथ्यात्व से दूर से ही बचना चाहिए। '**दूरेहि वाचंते**' विपरीत श्रद्धा मनावे, प्ररूपे, कहे, दुनिया को मनावे, समझ में आया? ऐसे विपरीत मान्यता के शास्त्र लिखे, '**दूरेहि त्यजंति**' '**मिथ्या दूरेहि त्यजंति, मिथ्या संग न दिष्टिते।**' मिथ्यात्व का संग न देखना चाहिए अथवा परिचय नहीं करना। मिथ्यात्व, माया में फँसे कुटुम्ब का संग बुद्धिमान सदा बचावे। क्या है देखो! माता-पिता, भाई भी यदि ऐसे मिथ्या संस्कारवाले हो (तो) छोड़ देना। है भैया? देखो! २९५।

'**मिथ्या माया कुटुम्बस्य।**' अपना कुटुम्ब हो, स्त्री हो, पति हो, भाई हो, कुटुम्ब के सबसे प्रिय रिश्तेदार हो, लेकिन मिथ्याश्रद्धा का संस्कार पड़ा है और मिथ्याश्रद्धा की वासना दूसरे को बताते हैं कि ऐसा मार्ग है, ऐसा मार्ग है। छोड़ दे कुटुम्ब को, छोड़ दे पत्नी को, छोड़ दे पति को, भाई को छोड़ दे। कड़क है, कड़क। परन्तु सत्य है। महान मिथ्यात्व के पाप की तो तुझे कीमत नहीं है। समझ में आया? और यह राग घट गया, ब्रह्मचर्य पाला, त्याग किया, इन्द्रियदमन किया, संयम पाला, रात्रि को चोविहार करते हैं। वह सब तो क्रिया (है)। सुन तो सही। जहाँ मिथ्यात्व का सूक्ष्म भी शल्य पड़ा है, उसके कारण से परम्परा निगोद में जाएगा। ऐसे कुसंग का त्याग करना। आहाहा! यह बड़ा कठिन, भाई! सेठी! छोड़ दे कुसंग, ऐसे मिथ्या संग को। समझ में आया?

संग '**विरते सदा।**' समझे? मिथ्यात्व, माया में फँसे हुए कुटुम्ब के संग से बुद्धिमान सदा ही बचा रहे। देखो! सदा बचा रहे। तुम्हारे साथ धर्म की चर्चा नहीं। समझे? संसार की बात हो तो भले, धर्म की चर्चा नहीं। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि विपरीत है। वह संग .. करता नहीं। कुटुम्ब के साथ भी नहीं करना। आहाहा! यह तो घर में क्लेश करा दे, ऐसा है।

**मुमुक्षु :** ... जिम्मेदारी तो है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन-सी जिम्मेदारी? संसार की अलग बात है। लेकिन इस

प्रकार का परिचय मत करना। वह कहेगा, मैं तुमको बात कहता हूँ। वह बुद्धिवाला हो। नहीं, विपरीत श्रद्धा की बात हमें नहीं सुननी है। .. हो तो कहे, नहीं, हमें वह बात नहीं सुननी है। समझ में आया? वह कहते हैं। कुटुम्ब छोड़ देना, देश छोड़ देना, घर छोड़ देना। मिथ्यात्व तीव्र हो और अपनी बुद्धि अल्प हो और उसका विपरीत संस्कार पड़ा हो तो छोड़ देना उसको। चाहे कुटुम्ब हो तो भी छोड़ देना। ओहोहो! यह जीव मिथ्यात्व के संस्कार छोड़े नहीं और दूसरा छोड़ दे, तो क्या छोड़ा? धर्म छोड़ दिया है। समझ में आया? ३०५। ३०५ गाथा है न? जीवरक्षा शब्द है न, इसलिए अर्थ समझने के लिये लेते हैं। ३०५ है न?

**जीवरक्षा षट् कायस्य, शंकये शुद्ध भावना।**
**श्रावको शुद्धदृष्टि च, फासू जलं फासू प्रवर्तते॥३०५॥**

पहला प्रश्न तो यह है कि जीव की षट्काय की रक्षा शब्द जो पड़ा है न, वह जीव की रक्षा कर सकते हैं, ऐसे अर्थ में नहीं है। क्योंकि छह काय जीव तो पर है। पर की पर्याय रक्षा कर सके, तब तो दृष्टि मिथ्यात्व हो गयी, परद्रव्य की पर्याय मैं करता हूँ। समझ में आया? शब्द नहीं समझे तो उल्टा अर्थ करे, ऐसा है उसमें से। देखो! जीव रक्षा षट्काय की। षट्काय की जीव रक्षा करना लिखा है। वह तो शब्द है ऐसा। उसका अर्थ सम्यग्दृष्टि को छह काय जीव को दुःख पहुँचाने का भाव नहीं होता, उसको मारने का भाव नहीं होता। मरे या जीवित रहे, वह तो उसकी पर्याय की लायकात है। उसका आयुष्य हो तो नहीं मरे, नहीं हो तो मर जाए उसके कारण।

शुद्ध सम्यग्दर्शन की भावना करनेवाला श्रावक को शुद्ध दृष्टि रखनेवाला सम्यग्दर्शन शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा ऐसा भान है। छह काय के प्राणियों की रक्षा करना.. लम्बा-लम्बा लिखा है, भाई! छह काय की जीव रक्षा अथवा उसको नहीं मारना, ऐसा भाव उसको होता है। है शुभभाव। छह काय के जीव को नहीं मारना, है तो शुभभाव, धर्म नहीं। पुण्यभाव (है)। परन्तु उससे पर की रक्षा कर सकते हैं, ऐसा (है) नहीं। पर की रक्षा करना माने तो मिथ्यादृष्टि है। परद्रव्य की पर्याय का कर्ता होता है। समझ में आया? दोपहर को चलता है न? समझे बिना शास्त्र के अर्थ के अनर्थ करे, मिथ्यात्व पोषे, कहते हैं कि उसका संग छोड़ देना। देखो!

**'जीव रक्षा षट् कायस्य, शंकये शुद्ध भावना'** समझ में आया? **'श्रावको सुदृष्टि'**। श्रावक शुद्ध दृष्टि रखनेवाला। **'जलं फासू प्रवर्तते।'** प्रासुक जल काम में लेते हैं। काम में लेते हैं, अर्थात् क्या? ऐसा भाव आता है। कोई प्राणी को दु:ख न हो, जल को दु:ख न हो। प्रतिमाधारी की बात ली है। ऐसा भाव आता है। पर की क्रिया अपने से होती है, ऐसा वे मानते नहीं। परन्तु ऐसा भाव (आता है कि) कोई प्राणी को दु:ख न हो। जल (जीवों की) रक्षा (के लिये) गालन.. छान के (उपयोग करते हैं)। क्रिया तो पर की है, हों! पर को आत्मा कर सकता नहीं। छानन-फानन का कर्ता हो तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? जैनधर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव समझना महा अलौकिक बात है। समझ में आया? छह काय की रक्षा का आ गया न? अब, ३२५। श्रावकों के आचार का सब वर्णन है, हों! सार-सार गाथा ली है।

**देह हदेवलि देवं च, उवइट्ठो जिनवरंदेहं।**
**परमेष्ठी संजुत्तं, पूजं च शुद्ध सम्यक्त्वं॥३२५॥**

सम्यग्दृष्टि, निश्चय से अपने देह में परमात्मा विराजता है, ऐसा मानता है। अपना भगवान देहदेवल में विराजता है। समझ में आया? अपना भगवान बाहर नहीं है। **'देह देवलि'** शरीररूपी मन्दिर में। आत्मारूपी देव। मैं ही परमेश्वर हूँ। अनन्त गुण का धाम, अनन्त आनन्द का कन्द, अनन्त केवलज्ञान की बेल को प्रगट करने का बीज। अनन्त-अनन्त केवलज्ञान.. केवलज्ञान.. केवलज्ञान सादि-अनन्त, ऐसी पर्याय अनन्त। केवलज्ञान एक समय की पर्याय है। दूसरे समय दूसरी होती है, तीसरे समय तीसरी होती है। केवलज्ञान, हों! वही केवलज्ञान नहीं रहता। समय-समय की केवलज्ञानपर्याय सादि-अनन्त (रहे), उसका बीज-पेट उसके आत्मा में है, आत्मा में है। मेरे में से केवलज्ञान की पर्याय बहे, ऐसा मैं (हूँ)। ऐसा देहदेवल में विराजमान भगवान, उसको अन्तर में अनुभव में प्रतीत करना, उसका नाम श्रावकाचार सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

पुन:, जिनेन्द्रों ने कहा है। देखो! **'उवइट्ठो जिनवरंदेहं'**, **'उवइट्ठो जिनवरंदेहं।'** जिनेन्द्रों ने ऐसा कहा है। तीन लोक के नाथ परमेश्वर वीतराग, सौ इन्द्रों के पूजनीक। महावीर आदि अनन्त तीर्थंकरों, सीमन्धर आदि परमात्मा विराजमान। विद्यमान आता है। ममलपाहुड़ में आता है, ममलपाहुड़ में आता है। वर्तमान विद्यमान सीमन्धर भगवान आदि। ममलपाहुड़

में आता है। थोड़ा-थोड़ा सब देख लिया है। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा। एक महीने में १२ (ग्रन्थ) पढ़े। हमें तो कितने समय से होता है परन्तु... समझ में आया? '**उवइट्ठो जिनवरंदेहं**' जिनवरेन्द्रों ने यह उपदेश किया है। समझ में आया? बाकी बाह्य मन्दिर आदि व्यवहार है। पुण्यबन्ध का कारण है। भक्ति, पूजा, यात्रा पुण्यबन्ध का कारण है। वास्तविक देव यहाँ विराजता है। समझ में आया?

'**परमेष्ठी संजुत्तं**।' कैसा है? सिद्ध परमेष्ठी गुणों सहित है। मैं तो पूर्ण सिद्ध के जितने गुण हैं, उतने पूर्ण मेरे में है। ऐसा परमेष्ठी मैं हूँ। ऐसी सम्यग्दृष्टि की दृष्टि अपने स्वभाव पर होती है। ज्ञाता-दृष्टा मैं पूर्ण अनन्त आनन्द का कन्द हूँ। राग उत्पन्न होता है, वह मेरा कर्तव्य नहीं, मैं जाननेवाला हूँ। देह की क्रिया होती है, मैं जाननेवाला हूँ। ऐसा सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा को सिद्ध समान (मानता है)। उसकी भक्ति, पूजा शुद्ध सम्यग्दर्शन है।

भक्ति की व्याख्या क्या? अपने पूर्णानन्द शुद्ध स्वरूप में एकाग्रता से सम्यग्दर्शन करना, वह भक्ति है। वह निश्चयभक्ति है। समझ में आया? भगवान आदि की भक्ति साक्षात् तीर्थंकर हो तो भी वह भक्ति, भगवान के समवसरण में होती है, वह व्यवहार भक्ति है। सेठ! अपना भगवान वहाँ उनके पास नहीं है।... यहाँ भगवान है। समवसरण में भी गणधर, भगवान की पूजा करते हैं। समझते हैं कि शुभभाव है। समझ में आया? श्रावक भी मणिरत्न से-दीपक से शुभभाव है। परद्रव्य का लक्ष्य है तो शुभभाव है। समझ में आया? मुक्ति का मार्ग नहीं। परन्तु बीच में व्यवहार आये बिना रहता नहीं। ये दो बात लोग करते हैं, देखो! यहाँ कहा।

'**पूजं**' अपना आत्मा पूज्य है, भक्ति करनेलायक है। अखण्डानन्द प्रभु एक विकल्प की गन्ध जिसमें नहीं, पूर्णानन्द परमेश्वर, जिसकी एक-एक गुण में अनन्ती शक्ति, ऐसा अनन्त गुण का प्रभु भगवान, जिसमें एक-एक गुण की अनन्ती पर्याय। समझ में आया? ऐसा अपना आत्मा निज कारण प्रभु, उसकी अन्तर्दृष्टि करना, एकाग्र होना, वही उसकी भक्ति और पूजा है। समझ में आया? वही भक्ति और पूजा संवर, निर्जरा का कारण है। समझ में आया?...चन्दजी! बहुत कठिन (पड़ता है) लोगों को। ऐ.. सोनगढ़ (वाले ऐसा कहते हैं)। अरे! सोनगढ़ नहीं, यह तो भगवान की बात है, सुन तो सही।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। अपने आप ही है अन्दर में। ... भाव आता है बराबर है। शुभभाव आता है, भक्ति, पूजा। इन्द्र नाचते हैं। शास्त्र में आता है। समझ में आया? ... विकल्प आया, उससे तीर्थंकर गोत्र बँधता है। विकल्प राग है। आहाहा! समझ में आया? षोडषकारण भावना है न? दर्शनविशुद्धि अकेले सम्यग्दर्शन की बात नहीं है। सम्यग्दर्शन से बन्ध पड़ता ही नहीं। क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग:। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प श्रद्धा, अनुभव और स्थिरता मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग से बन्ध होता ही नहीं। वह बात यहाँ कहते हैं। तारणस्वामी यह कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को षोडषकारण भावना का राग आता है, मिथ्यादृष्टि को नहीं। और आया वह राग पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

षोडषकारण भावना भायी है। किसने? जिसने। तथा अरिहन्त पद की भावना भायी है। वह तो एक ही बात है। '**अरहंत भावनं**' है न? दो बोल लिये हैं न? षोडष भावना भाये में '**अरहंत भावनं** (है)। वह तो तीर्थंकरपने का विकल्प आया। समकिती को आता है, यह बताना है। श्रद्धा में ठिकाना नहीं है, मिथ्यात्व (है) और हमें षोडषकारण भावना है। कहाँ से आयी तेरे? यह कहते हैं। समझ में आया? करो, धर्म प्रभावना और करो दुनिया में ऐसा। तीर्थंकर गोत्र बँध जाएगा। करो, वैयावृत्त्य और करो ऐसा। कहते हैं कि मूढ़ है। सम्यग्दर्शन बिना तेरा ऐसा विकल्प कभी तीन काल में आता नहीं। कहो, समझ में आया? तथा अरहन्त भावना भाये। लो, तीन पदार्थ स्वरूप। तीन अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रस्वरूप तीर्थंकर पूर्ण पाँच ज्ञानमय होते हैं। चौबीस में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पूर्ण हुआ। किसको? जिसने अपना सम्यग्दर्शन स्वभाव को प्रगट किया, उसमें जो विकल्प आया, तीर्थंकर गोत्र का बन्ध हुआ, वह तीर्थंकर भविष्य में होंगे। परन्तु वह विकल्प और प्रकृति से तीन दर्शन-ज्ञान-चारित्र पूर्ण होंगे, ऐसा नहीं। परन्तु उस जीव की ऐसी लायकात है कि अगले भव में दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपने स्वभाव के कारण पूर्ण करेगा। विकल्प आया, वह राग है; बन्ध पड़ा, वह जड़ प्रकृति है। समझ में आया?

कोई कहे कि देखो भैया! तीर्थंकर गोत्र बाँधा। तो तीर्थंकर गोत्र बँधा है, उससे

केवलज्ञान पायेगा। तीर्थंकर प्रकृति बन्ध से केवलज्ञान पाये तो वह तो बन्ध की प्रकृति जड़ हुई। और जिस भाव से बँधा, वह भाव तो आस्रव, उदयभाव है, राग है। उदयभाव से बन्ध पड़ता है। क्या क्षयोपशमभाव से बन्ध पड़ता है? पाँच भाव है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और पारिणामिक। उदयभाव से बन्ध पड़ता है। तीन काल—तीन लोक में कोई भी प्रकृति का नया बन्ध पड़ो, (वह) उदयभाव से (पड़ता) है। क्षयोपशम, उपशम, क्षायिक से बन्ध पड़ता नहीं। खबर नहीं और ऐसे ही लगा दे। देखो भैया! षोडशकारण भावना भायी, तीर्थंकर होगा। तीर्थंकर प्रकृति बँधी, उस कारण से केवलज्ञान पायेगा। तीर्थंकर प्रकृति तो अजीव है। और जो भाव था, वह तो उदयभाव राग है। राग और अजीव से केवलज्ञान होगा? ईश्वरचन्दजी! बड़ी कठिन बात।

**मुमुक्षु :** भावना भाते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भावना भाते नहीं, आ जाती है। भावना भाते हैं, ऐसा कहा है। वह अर्थ अभी नहीं किया है।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विकल्प आता है, उसको भाते हैं—ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? और वह भी बात ऐसी है कि कोई तीर्थंकर का द्रव्य हो, उसको विकल्प आता है। अनादि की श्रेणी की स्थिति उसकी ऐसी है। सब ऐसा भाव करे, ऐसा होता ही नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। वह तो जो तीर्थंकर होनेवाला जीव है, उसके क्रम में ऐसी विकल्प की दशा चारित्र में बीच में आती है। ऐसी उसमें योग्यता पड़ी है। दूसरे में ऐसी योग्यता है नहीं। समझ में आया? चारित्रदोष की विपरीतता का वह कण है, परन्तु वह सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर होनेवाले हैं, ऐसी उसमें योग्यता है। उसको ऐसा विकल्प आता है। लेकिन जानते हैं कि आस्रव है, मुझे हितकर नहीं है। बन्ध पड़ा, वह मुझे हितकर नहीं है। परम्परा से मुक्ति होती है, ऐसा कथन शास्त्र में चले, परन्तु उसका अर्थ है कि उससे होता नहीं। ओहोहो! करो, षोडषकारण भावना, लगाओ ऐसा। आठ कर्म की पूजा।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह शुभभाव है, शुभभाव है, भैया! आया वह शुभभाव है, इतना

है बस। फिर समझना दूसरी चीज़ है। विकल्प का विवेक और अजीव परतत्त्व का विवेक से भिन्न भगवान है, सम्यग्दृष्टि ने पहले अन्तर से स्वीकार किया है। जितना उदयभाव का विकल्प आयेगा, वह मेरी चीज़ नहीं। मुझे उपादेय नहीं। षोडषभावना उपादेय नहीं। ऐसा सम्यग्दृष्टि मानते हैं। हेयरूप है, परन्तु आये बिना रहता नहीं। उसकी योग्यता ऐसी है तो आती है। आहाहा! जगत को कठिन (पड़े)। तत्त्व की सत्यता सुनने में आयी नहीं। पण्डितजी! यह तो सर्वज्ञ पन्थ है। वीतराग त्रिलोकनाथ का पन्थ है। इन्द्र मानते हैं। तीर्थंकर कहते हैं, गणधर स्वीकारते हैं। दो-चार आदमी, पच्चीस-पचास लोग मान ले ऐसी यह चीज़ है? समझ में आया?

कहते हैं, पाँच ज्ञानमय होता है। कौन? वह (होनेवाले) तीर्थंकर सम्यग्दर्शन सहित है, उसकी भावना में पूर्ण शुद्धि करने का भाव है। बीच में विकल्प आया तो उससे होता है, ऐसा नहीं। और वह राग भी जब छेदेगा, तब केवलज्ञान होगा। और केवलज्ञान हुआ तब तीर्थंकर प्रकृति बँधी (थी), उसका पाक-विपाक आयेगा। केवलज्ञान होने के बाद प्रकृति का पाक आता है। तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवें (गुणस्थान में) आता है। नीचे आता ही नहीं। आहाहा! क्या किया तीर्थंकर प्रकृति ने आत्मा को? परपदार्थ आत्मा को क्या करे? स्वभाव में सहायक होता है? बिल्कुल नहीं। विकल्प भी आया था, वह आगे जाकर स्वरूप में स्थिर हुआ, विकल्प छूट गया, प्रकृति रह गयी। जब केवलज्ञान.. वह कहते हैं, पाँच ज्ञानमय हुआ, तब तीर्थंकर प्रकृति बँधी थी, पाक में-उदय आया तेरहवें (गुणस्थान) में। केवलज्ञान हो गया। सेठ!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दूसरे को लाभ.. जिसकी उपादान की योग्यता होती है, उसको निमित्त होता है। सब तकरार है। बहुत चर्चा चल गयी है। जिसकी उपादान की योग्यता हो, उसे वाणी निमित्त होती है। वाणी क्या करे? अनन्त बार तीर्थंकर के पास गया है। अनन्त बार दिव्यध्वनि सुनी। अनन्त बार भगवान की पूजा समवसरण में इन्द्र के साथ की। क्या हुआ? मूल चीज़ की क्या दृष्टि है? मूल चीज़ क्या है? अपने स्वआश्रय की क्या चीज़ प्रगट होती है, (उसका) भान नहीं, तो भगवान क्या करे? भगवान तो वहाँ विराजते हैं। क्या?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उदय। जड़ का उदय-पाक आता है। समवसरण आदि रचा जाता है। केवलज्ञान तो हो गया है। केवलज्ञान में क्या प्रकृति ने मदद की ? पाक तो तेरहवें में आया। आहाहा ! इसलिए यह गाथा ली है। समझ में आया ? ३४६ है। ३४६।

शास्त्र भक्ति। '**ज्ञानगुणं च तत्त्वारि, श्रुतं पूजा**' ऐस लिखा है। देखो ! सम्यक् श्रुत किसको कहते हैं, उसका सम्यग्दृष्टि को विवेक है। चार अनुयोग। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, समझ में आया ? कथानुयोग। ये चार किसको कहते हैं ? किसका अभ्यास करना ? सम्यग्दृष्टि को सब खबर है। वह बात ली है। देखो ! वह लेंगे, हों ! चार अनुयोग। बाद में चार अनुयोग लेंगे। अभी चार अनुयोग किसको कहना ? द्रव्यानुयोग किसको कहना ? अभ्यास किसको करना, यह खबर नहीं। तो श्रावक को खबर है, सच्चे श्रावक को।

**ज्ञान गुणं च चत्त्वारी, श्रुतं पूजा सदा बुधै।**
**धर्म ध्यानं च संजुत्तं, श्रुतं पूजा विधीयते॥३४६॥**

'**ज्ञान गुणं च चत्त्वारी**' चार अनुयोग। समझ में आया ? चार अनुयोग के नाम नहीं आते। सेठ तो ना कहते हैं। ... देखो ! ज्ञानगुण का निमित्त शास्त्र क्या है ? चार प्रकार के शास्त्र हैं न। '**चत्त्वारी।**' '**श्रुतं पूजा सदा बुधै।**' '**बुधै**' अर्थात् ज्ञानियों को श्रुतपूजा करनी है। श्रुतपूजा अर्थात् भावश्रुत पूजा अन्दर में करनी चाहिए। अन्तर में भावश्रुत दर्शन आश्रय में सम्यग्दर्शन हुआ है तो सम्यक् में स्वसंवेदन करके भावश्रुत की वृद्धि करनी, वह भावश्रुत पूजा है। वह अन्दर में संवर, निर्जरा है। सम्यग्दर्शन सहित। बाह्य द्रव्यश्रुत की पूजा में विकल्प है। शुभराग है। सम्यग्दृष्टि को ऐसा भाव आता है। समझ में आया ? '**चत्त्वारी, श्रुतं पूजा सदा बुधै।**'

'**धर्म ध्यानं च संजुत्तं**' भाषा यह ली है। ऐसा नहीं है कि धर्मध्यान सहित ही होना चाहिए। तो धर्मध्यान तो सम्यग्दृष्टि को ही होता है, अज्ञानी को धर्मध्यान होता नहीं। अपना स्वभाव ज्ञायक चिदानन्द परिपूर्ण प्रभु, किसी का कर्ता-हर्ता है नहीं। किसी की सहायता से मेरी दशा प्रगट हो, ऐसा मैं नहीं हूँ। ऐसी अन्तर अनुभव में प्रतीति हुई, ऐसे धर्मध्यान सहित श्रुतपूजा करने का (भाव आता है)। श्रुतपूजा के दो अर्थ है। भावश्रुत, द्रव्यश्रुत।

भावश्रुत चार अनुयोग के अन्दर में सम्यग्ज्ञान प्रगट करना, स्वभाव के आश्रय से एकाकार होकर। द्रव्यश्रुत बाहर है, उसकी भक्ति, वह विकल्प है। अपना स्वभाव भावश्रुत प्रगट करना, वह निर्विकल्प पूजा है। समझ में आया? अकेली पूजा श्रुत की करे और समझे नहीं कुछ। सेठ! करो पूजा। क्या है? वह तो अजीव शास्त्र है। उसकी पूजा में क्या है? करो पूजा, भाई! शास्त्र में भगवान के भाव भरे हैं। नहीं। ऐसा कहते हैं। भगवान की पर्याय भगवान में है, वाणी की पर्याय वाणी में है। वह तो निमित्त से कहने में आया-जिनवाणी। जैसे जिनप्रतिमा है, वैसे जिनवाणी है। वाणी में क्या जिन आ गये हैं? वीतराग का भाव आया है उसमें? वह तो जड़ परमाणु की पर्याय है। उसकी परमाणु की पर्याय में चेतन की पर्याय आयी मानना, ऐसा मिथ्यादृष्टि मानते हैं। समझ में आया? ऐसे भगवान स्थापना निक्षेप है। उसमें भाव अरिहन्त निक्षेप मानना, वह विपरीत मान्यता है। समझ में आया? सेठ! यहाँ तो तोल-तोलकर (बात आती है)। हीरे को तोलकर लेते हैं न? उसके काँटे में थोड़ा भी आगे-पीछे नहीं होना चाहिए।

एक रतिभार... हमारे भाई कहते थे न? बेचरभाई। (संवत) १९९९ के चातुर्मास में हम वहाँ थे। एक हीरा, साठ हजार का एक हीरा.. लाये बताने को। हीरे का व्यापारी है न। कल आये थे न। हीरा का व्यापार है, बड़ा व्यापार है। बेचरभाई लाये थे, एक अस्सी हजार का, एक साठ हजार का। साठ हजार का था, वह छोटा था। .. एक रत्ती का दस हजार रुपया लेते हैं। एक रत्ती का दस हजार। समझे? रत्ती समझते हो? तीन रत्ती का वाल। वह सब चला गया। अभी दूसरी गिनती चलती है। पहले ऐसा था। तीन रति का वाल, सोलह वाल का गदियाणुं। गदियाणुं आधे रुपये का। बत्तीस वाल का एक रुपया। रुपयाभार। एक रुपयाभार बत्तीस वाल होता है। ९६ रति का एक तोला। रति.. रति। ... था न? एक रति का दस हजार रुपया। वह काँटा कैसा होगा? उसे तोलनेवाला काँटा कैसा होगा? काँटा समझे? काँटा कहते हैं? उसका पल्ला है न? पल्ला। ... हमें खबर नहीं। वह जहाँ रहते थे, इतना होता है। ऐसे ऊपर-नीचे नहीं होता। समझ में आया? उसका पल्ला है न? पल्ला। थोड़ा ऊँचा होता है। नीचे धक्का लगे तो फेरफार हो जाए। चार मण चावल का वजन नहीं करना है। पल्ला इतना सूक्ष्म (होता है)। थोड़ा-सा ऊपर-नीचे हो तो तोलमाप हो जाता है। समझ में आया? एक रत्ती का दस हजार रुपया। एक अस्सी

हजार का हीरा था।... समझ में आया? छह रत्तीभार हुआ न। साठ हजार का। और दूसरा ... अस्सी हजार का।...

यह तो सर्वज्ञ वाणी की तुलना (होती है)। हीरा तो धूल है। वीतराग वाणी का ज्ञान तोलना, उसका सम्यग्ज्ञान का काँटा बराबर सूक्ष्म होना चाहिए। समझ में आया? थोड़ा भी फेर पड़े तो सम्यग्ज्ञान की तुलना यथार्थ कर सके नहीं। भीखाभाई! ... द्रव्यानुयोग की एकता का लेते हैं। है न द्रव्यानुयोग? ३५६। यह पहले चल गयी है। ३५६।

**द्रव्यानुयोग उत्पाधं, द्रव्यदृष्टि च संजुत्तं।**
**अनन्तानन्तं दिस्यन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं॥३५६॥**

श्रावक सम्यग्दृष्टि को द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना। समझ में आया? चार अनुयोग का अभ्यास। तीन का आ गया है। द्रव्यानुयोग में सार ... कहते हैं। द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। उसका अर्थ यह। द्रव्यानुयोग अन्दर में स्वभाव में उत्पन्न करना। और बाह्य में द्रव्यानुयोग शास्त्र का अभ्यास करना। द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना। द्रव्यानुयोग किसको कहते हैं? समझे?

जिसमें आत्मा का वर्णन हो, द्रव्य का वर्णन हो, गुण-पर्याय का वर्णन हो, उसके अस्तित्व का वर्णन हो, जिसमें अभेद, भेद क्या चीज़ है उसका वर्णन हो। '**द्रव्यानुयोग उत्पादन्ते**।' उसका अभ्यास श्रावकों को हमेशा करना। वह शास्त्र भक्ति में, शास्त्र कर्तव्य में हमेशा विकल्प आता है। निश्चय में अन्तर में द्रव्यानुयोग की शुद्धि प्रगट करना। बाहर में ऐसा विकल्प श्रुतभक्ति का, श्रुतवांचन का हमेशा द्रव्यानुयोग का अभ्यास (होता है)। यहाँ तो अभी द्रव्यानुयोग किसको कहना खबर नहीं, तो अर्थ कैसा करना, वह खबर ही नहीं है।

सम्यग्दृष्टि होकर '**द्रव्यदृष्टि संजुत्तं**।' साथ में द्रव्यार्थिकनय से शुद्ध आत्मा की दृष्टि भी प्राप्त करनी चाहिए। अकेले द्रव्यानुयोग का अभ्यास नहीं। समझ में आया? ... पैसे का। सेठी! पैसे का ... एक साधु कहता था कि सब वीतरागस्वभावी। सामनेवाले ने कहा, हम वीतरागी कैसे? उसने कहा, आप सब वीतराग हो। हम वीतराग कैसे? उसे ऐसा लगा कि, कोई आत्मा के लिये कहते होंगे। वीतराग मालूम नहीं? वित्त अर्थात् पैसा, राग अर्थात्

पैसे का प्रेमी। पैसे को वित्त कहते हैं न? वित्त। वित्त-पैसा। वीतराग है सब। वित्त अर्थात् पैसे का प्रेमी। ऐसे विपरीत अर्थ करते हैं।... तत्त्व की खबर नहीं। आत्मा वीतरागी है। आत्मा का स्वभाव वीतराग ही है। उसका तो भान नहीं और यह वीतराग लगा दिया। आप सब वीतरागी हो। पैसे का प्रेमी। अरे..! कहो, समझ में आया?

'**द्रव्यदृष्टि संजुत्तं।**' सम्यग्दृष्टि द्रव्यदृष्टि है। द्रव्य अपना कैसा है, द्रव्यार्थिकनय से अपनी दृष्टि करके, जो दृष्टि लगायी है, उसका बारम्बार अपने स्वभाव सन्मुख में अभ्यास करना। समझ में आया? '**अनन्तानन्तं दिष्टंते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं**' अपने शुद्ध आत्मा के समान जगत के अनन्तानन्त आत्मा .. सब द्रव्य शुद्ध है। जैसा मेरा आत्मा शुद्ध है, ऐसे सब आत्मा शुद्ध दृष्टि में आता है। अपनी पर्यायबुद्धि निकल गयी। सब आत्मा द्रव्य से शुद्ध है, ऐसा सबको दृष्टि से देखते हैं। पर्याय अशुद्ध है तो उसके (पास रही)। समझ में आया? '**अनन्तानन्तं दिष्टंते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं।**' उसका अर्थ वह किया। बाकी अपने आत्मा को अनन्त-अनन्त गुणवाला प्रगट है, ऐसा अन्तर दृष्टि में देखते हैं। ऐसा लेना। समझ में आया?

यहाँ '**स्वात्मा**' शब्द पड़ा है न? '**अनन्तानन्तं दिष्टंते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं।**' अपना आत्मा अनन्तानन्त गुण से भरा प्रगट ही है। व्यक्त अर्थात् प्रगट ही है। कोई गुप्त नहीं है। समझ में आया? एक समय में अनन्तानन्त। वह कहा था न? अनन्त गुणा गुण। ऐसे अनन्तानन्त गुण अपने आत्मा में प्रगट ही पड़े हैं। ऐसे स्वात्मा को द्रव्यानुयोग अर्थात् अन्तर्मुख होकर अभ्यास करना, उसका नाम सम्यग्दृष्टि का श्रावकाचार कहने में आता है। कहो, समझ में आया? ३९२॥

**दर्शनं यस्य हृदये शुद्धं, दोषं तस्य न पश्यते।**
**विनाशं सकलं जानंते, स्वप्नं तस्य न दिष्टंते॥३९२॥**

देखो! क्या कहते हैं? जिसके हृदय में सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभव हुआ है, प्रतीत, अनुभव, भान हुआ, शुद्ध है। उसके भीतर कोई दोष नहीं दिखलाई पड़ता है। पहले वह शब्द आया था। '**दोषं न पश्यते।**' दोष दृष्टि में नहीं दिखते, दृष्टि में द्रव्य दिखता है। दोष जो रागादि होते हैं, ज्ञानी उसका ज्ञाता-दृष्टा है। समझ में आया?

उसके भीतर कोई दोष नहीं दिखलाई (देता है)। अकेला आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्य की दृष्टि है, पूर्णानन्द ज्ञान दिखता है।

'**विनाशं सकलं जानंते**' सर्व जगत की धन, वस्त्रादिक परिणति, परिग्रह को विनाशीक जानते हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक अपने नित्य आत्मा को अनुभव में जानते हैं और सब पदार्थ, जगत का धन, वस्त्र, महल, मकान, इज्जत, कीर्ति विनाशीक मानते हैं। सब नाशवान है, नाशवान है। मेरा आत्मा त्रिकाल आनन्द ध्रुव एक अविनाशी है। ऐसे सम्यग्दृष्टि श्रावक आचार कहने में (आता है)। लो, यह आचार। '**स्वप्नं तस्य न दिष्टंते**।' स्वप्न में भी नाशवान वस्तु का राग पैदा नहीं होता। सपने में भी राग मेरा है, देह की क्रिया मेरी है, ऐसा सम्यग्दृष्टि को होता नहीं। सपने में नहीं आता। सपना ऐसा नहीं है। आहाहा! राग का कण उत्पन्न होता है, वह मेरा नहीं, नाशवान है। देहादि पदार्थ नाशवान है। '**स्वप्नं तस्य न दिष्टंते**।' सपने में भी पर को अपना जानते नहीं। समझ में आया? ३९९ देखो।

**अनेक पाठ पठनं च, अनेक क्रिया संजुत्तं।**
**दर्शनंशुद्ध न जानंते, वृथा दान अनेकधा॥३९९॥**

यह तो कैसे अर्थ करना, कैसे समझना, वह भी साथ में आता है। समझ में आया? '**अनेक पाठ पठनं**।' अनेक पाठों का पढ़ना। शास्त्र का, हों! दूसरे की बात (नहीं है)। दूसरा सब तो कुज्ञान है। शास्त्र के अनेक पाठ पढ़ना और अनेक प्रकार से व्यवहारचारित्र का पालना। दया, दान, भक्ति, व्रत, ब्रह्मचर्य सब पालना और अनेक प्रकार का दान देना। अनेक प्रकार मुनियों को दान, करुणावन्त को दान, पण्डित को दान, ऐसा सब आता है न? निरर्थक है। किसको? यदि शुद्ध सम्यग्दर्शन अनुभव नहीं किया जाए। अपनी दृष्टि स्वभाव सन्मुख (करके) सम्यग्दर्शन न हो, अपनी दृष्टि सुधारी नहीं, उसकी सब क्रिया वृथा फोगट है। पढ़ा-लिखा व्यर्थ है, क्रियाकाण्ड व्यर्थ है, उसका दान (व्यर्थ है)। कहो, सेठी! ओहो! ४००।

**दर्शनं यस्य हृदि दृष्टं, सुयं ज्ञान उत्पाद्यते।**
**कमठी दृष्टि जथा अंडं, स्वयं वर्धति यं बुधैः॥४००॥**

यह गाथा पहले अपने आ गयी है। आठ व्याख्यान में आ गयी है। जिसके मन में

सम्यग्दर्शन विद्यमान है। अपने स्वभाव की दृष्टि, राग-विभाव से भिन्न, ऐसा प्रथम धर्म प्रगट हुआ है, वहाँ ही श्रुतज्ञान बढ़ता जाता है। वहाँ सम्यग्ज्ञान बढ़ता जाता है। सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान बढ़ता है नहीं। वहाँ ज्ञान है नहीं तो बढ़े कहाँ से ?

'**सुयं ज्ञान उत्पाद्यते**' है न ? '**कमठी दृष्टि जथा डिंभं, सुयं व्रिद्धन्ति।**' जैसे ...की दृष्टि से, काचबा, काचबा होता है या नहीं ? कछुआ। ... उसी तरह बुद्धिमानों को ... ज्ञान बढ़ता जाता है। कछुआ ... दृष्टि देता है। कछुआ की ऐसी प्रकृति है कि ... कछुआ का निरन्तर ध्यान ... की तरफ रहता है। ऐसे धर्मी की दृष्टि बारम्बार द्रव्यस्वभाव पर पड़ती है। वस्तु... वस्तु... वस्तु.. वस्तु... वस्तु। उसकी दृष्टि यहाँ (है) तो उसका ज्ञान बएता ही जाता है। कछुआ की .... उसकी दृष्टि वहाँ हमेशा रहे तो बढ़ती जाती है। ऐसे सम्यग्दृष्टि की दृष्टि द्रव्य पर है, तो सम्यक् श्रुतज्ञान बढ़ता ही जाता है। बिना पढ़े बढ़ता जाता है, ऐसा कहते हैं। सेठी ! उसका नाम दर्शनशुद्धि कहने में आता है। हो गया...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)